विषैला समाज

[सामाजिक उपन्यास]

लेखक—
राजाराम अग्रवाल 'राजेश'

प्रकाशक—
आदर्श हिन्दी पुस्तकालय
४१६, अहियापूर
इलाहाबाद।

दूसरा संस्करण] मई १९४५ [मूल्य २) रु०

विषैला समाज

पहला परिच्छेद

"ऐसा क्यों कह रही हो बहन, मुझे दुःख होता है!"

"नहीं सावित्री, मैं ठीक कह रही हूँ।" रोगिणीने बड़े कष्टसे अपना कण्ठ साफ किया और बोली—"अब मैं बचूंगी नहीं बहन, मर्दोंका विश्वास नहीं होता...कौन जाने वे मेरे पीछे दूसरा विवाह करलें... ओफ! उस समय मेरी पुष्पाकी क्या दशा होगी!...न बहन मुझे भरोसा नहीं, तू प्रतिज्ञा कर कि मेरी पुत्रीको अन्तिम श्वास तक अपनी समझकर रक्खेगी।" कहते-कहते रोगिणीका कण्ठ भर आया और नेत्रोंसे अश्रु-धारा बहने लगी।

सावित्रीने उसकी गोदमें पड़ी हुई बालिकाको उठाकर अपने हृदयसे लगा लिया और बोली—"बहन तुम इसकी चिन्ता न करो, अपने जीवन भर मैं इसे कोई कष्ट न होने दूंगी, कुमारसे अधिक मुझे इसका ध्यान होगा। मैं बचन देती हूँ कि यथाशक्ति इसे कभी दुखित न होने दूंगी, इसकी हर आपत्तिको मैं अपने सिर लेती रहूँगी।"

रोगिणीका रोम-रोम खिल उठा, नेत्र फिरसे चमकने लगे और कुछ क्षणके लिये चेहरेपर लालिमा-सी छा गई। खुशीके आवेशमें मुखसे निकल गया—"अब मैं चैनसे मरूंगी!"

यही उसकी प्रबल और अन्तिम इच्छा थी, उसके जीवनकी यही एक विकट और हृदय-मंथन समस्या थी, इसी एक आशंकाने उसके कोमल-हृदयपर चिन्ताके बादल आच्छादित कर रक्खे थे। सावित्रीने प्रतिज्ञा करके मानों उसे असह्य वेदनासे मुक्त-सा कर दिया। अब उसके हृदयमें पूर्ण रूपसे शान्ति स्थापित थी।

कुछ क्षण योंही बीतनेके बाद रोगिणीकी दशा क्षीण होने लगी। सावित्रीने तुरन्त इसकी सूचना बैठकमें पहुँचायी, जहां उसके पति तथा पुष्पाके पिता लाला कंचनलाल बैठे हुए अपना नित्यका कार्य करनेमें इतने लीन थे कि अपने घरकी सुधि लेना भी जिन्हें दूभर था। ऐसी भयानक खबर सुनकर भी कुन्दनपुरके जमींदार महोदय विचलित न होंगे, इसकी कोई स्वप्नमें भी कल्पना नहीं कर सकता था। धर्म-पत्नीकी अवस्था शोचनीय है, यह खबर उन्होंने ठंडे दिलसे सुनी और चुपचाप गम्भीरताकी सजीव मूर्ति बने अपने दीवान साहबके साथ रोगिणीको देखने चल दिये।

कमरेमें पदार्पण करते ही उन्होंने देखा कि रोगिणीकी उलटी श्वास चल रही थी। देखते ही पत्नी-प्रेम उमड़ पड़ा। झपटके उसकी रोग-शय्यापर जा पहुँचे। कुछ आभास-सा हुआ उसे, और धीरे-धीरे मुंदे नेत्र एक बार फिर खुल गये, अपने आराध्य देवको अन्तिम समय अपने सामने खड़ा देख उसने एक सन्तोषकी सांस ली और उठनेका निष्फल प्रयत्न किया, परन्तु उठ न सकी। अन्तमें कुछ अस्फुट ध्वनि उसके मुखसे निकली—"नाथ...पुष्पाको..."

वाक्य पूरा होनेसे पूर्व, बीच ही में जीवन-लीला समाप्त हो गई—

शरीरसे आत्माका सम्बन्ध विच्छेद हो गया। चली गई, इस मत्सरमय विश्वरको छोड़कर वह उस तूरीय-धामको, जहां पुण्य और धर्मके साथ प्रोज्वल प्रेम सदा पारिजात-कुंजमें विहार करता है, जहां अनन्त शांति का साम्राज्य है। यहां शेष रह गया स्मृति-चिन्ह केवल एक-वर्षीया बालिका पुष्पलता, और—और प्राण-रहित उसका मृत-शरीर!

क्या इस असार संसारका अन्त यही है?

× × ×

देहरादूनसे लगभग चार मील पूर्वकी ओर 'कुन्दनपुर' नामका एक गांव था। इस गांवमें अधिकांश घर सुनारोंके थे, यद्यपि वे सब किसानी अथवा मजूरी आदि करके ही अपनी जीविका-उपार्जन किया करते, तथापि सुनारोंकी जमींदारी होनेके कारण लोग उसे 'कुन्दनपुर' अथवा 'सुनारवाला' के नामसे पुकारा करते थे। लाला कंचनलाल यहांके बड़े जमींदार थे। विपुल सम्पत्तिका एकमात्र अधीश्वर होनेके कारण उनका दूर-दूर बड़ा प्रभाव था। कठोर स्वभावके होनेपर भी कुन्दनपुरके सुनार तो उन्हें अपनी जातिका मुकुट ही समझते थे। मान, प्रतिष्ठा, धन और सम्पत्ति सभी कुछ उनके पास थी, मानों सांसारिक दृष्टि-कोण में वे हर पहलूसे भरपूर थे।

कुन्दनपुरके निकट ही एक विशेष सुन्दर स्थलपर, नवदूर्वादल शोभित बनवेलिवेष्ठित एक नन्दन-निन्दित निकुंज था। उसीके मध्यमें लाला कंचनलालका भव्य भवन खड़ा, पास पड़ोसकी झोपड़ियोंको लजा रहा था, इसका नाम रक्खा था उन्होंने 'कंचनसदन'—सदन क्या था अच्छा खासा महल था, जो भी देखता उसकी बनावटकी तारीफ किये

बिना न रहता। एक ओर उससे सटी हुई छोटी-सी नहर-जो पासकी पर्वतीय श्रेणियोंको काटकर खेतोंकी आबपाशीके लिये लाई गई थी, अपने स्वच्छ जलके साथ बही जा रही थी। कंचन-सदनकी पिछली ओर कोई दो सौ गजकी दूरीपर ऊंची-ऊंची पर्वतकी श्रेणियां दूर तक फैली चली गई थी।

इस समय लाला साहब दीवानखानेमें बैठे अपने कारबार तथा लेन-देनका हिसाब देख रहे थे। दीवान विजयसिंह एक एक करके सबका हिसाब समझाते जाते और वे अपनी इच्छानुकूल प्रत्येकपर रिमार्क देते जाते थे। सामने जमीनपर कुछ लोग बैठे थे, जिनमेंसे कुछ किसान थे और कुछ वे लोग थे जिन्होंने समय पड़नेपर लाला साहबसे रुपये उधार लेकर अपना काम चलाया था। कुछ देर बाद दीवान साहबने जरूरी कागजात उठाकर किसी ऐसे व्यक्तिका नाम लिया कि जिसे सुनकर लाला साहब हठात अपने स्थानसे उछल पड़े और कुछ उत्तेजित स्वरमें बोले—

"यह कम्बख्त भुल्लन ग्वाला अपना हिसाब कब साफ करेगा? मालूम होता है दीवानजी, आप अपने आसामियोंके साथ कतई सख्ती का बर्ताव नहीं करते, लातोंके भूत बातोंसे कहीं मानते हैं।"

दीवानजीने नम्र भावसे उत्तर दिया—"सरकार एकदम सख्त बन जानेसे भी तो काम नहीं चलता।"

मानों अग्निको घीका स्पर्श हुआ, लालासाहब बिगड़कर बोले—"सख्त बन जानेसे भी तो काम नहीं चलता—क्या कह रहे हो दीवान-जी! इस ग्वालेको रुपये लिये आज पूरे सवा तीन साल हो रहे हैं,

अभी तक दिया कुछ इसने ! भाई, पांच सौ रुपये हैं कोई छोटी मोटी रकम तो है नहीं। आखिर देगा नहीं तो अदा कैसे होंगे ?"

दीवानजीने समझाते हुए कहा—"ब्याजके रुपये तो उसके हर महीने दूधके हिसाबमें पूरे हो ही जाते है, मूलका रुपया भी अब वह शीघ्र दे देनेको कहता था। सुनते हैं पिछले साल उसका बहुत नुकसान हो गया था। इसीलिये रुपया पहुँचनेमें इतनी देरी हुई !"

लालासाहबने एक प्यादेकी ओर देखके कहा—"अरे जरा उसे जाकर बुला तो ला।"

तुरन्त एक हृष्ट-पुष्ट प्यादा बाहर गया और कुछ क्षण उपरांत अपने साथ एक बृद्धको लिये हुए वापस आया। बृद्धने बड़े आदरसे झुककर उनका अभिवादन किया, उसे देखते ही लाला साहबका पारा फिर एक बारगी ऊपर चढ़ गया और गरजके बोले—"क्यों रे झुल्लन ! तेरी तरफ अभी सारी रकम रुकी पड़ी है, अदा क्यों नहीं करता !"

झुल्लनने उत्तर दिया—"सरकार, आपसे रुपये लेकर मैंने जितनी भैंसें और गउएं ली थीं वे सब पिछले साल जो पशुओंकी बीमारी चली थी, उसमें खतम हो गईं। अब मेरे पास केवल तीन गाएं और दो भैंसें ही रह गई हैं, उन्हींका दूध बेचकर अपने परिवारका निर्वाह करता हूँ और जो कुछ बचता है, वह सब महाजनोंकी भेंट चढ़ा देता हूँ, बड़ी कठिनाईसे दिन बीत रहे हैं।"

लाला साहबने भौंहें तरेरके कहा—"ओह ! यह सब मैं कुछ नहीं सुनना चहता, मुझे तो रुपये चाहिये रुपये ! जैसे भी हो, रुपये फौरन

अदा करो, मैं तुम्हें तीन महीनेका समय देता हूँ। इसके बाद एक रोज भी..."

भुल्लन—"दया कीजिये सरकार! इतने समयमें मुझ जैसा गरीब आदमी इतनी बड़ी रकम कैसे दे सकेगा?"

लाला साहब—"जैसे लिया था वैसे दो। चोरी करो, डाका डालो, बैंक लूटो—कुछ भी करो यह मुझे जाननेकी जरूरत नहीं। मुझे तो रुपया चाहिए रुपया! जाओ उठो, तीन महीने तक जैसे हो, रुपया देनेका प्रबन्ध करो नहीं तो सब घर, द्वार नीलाम हो जायेगा।"

भुल्लन—"बहुत कठिन है मालिक! इतने समयमें मैं रुपये नहीं दे सकूंगा।" कहते हुए वृद्धने कातर दृष्टिसे दीवानजीकी तरफ देखा, मानों वेही इस समय उसकी डूबती नैयाके पतवार थे।

दीवानजी वास्तवमें बड़े दयालु और सज्जन पुरुष थे, उनसे दुखित-जनोंका दुख नहीं देखा जाता था, वे यथा शक्ति सबको सुखी देखनेकी चेष्टा किया करते। लाला साहबका क्रोध बढ़ा देख उन्हें शान्त करते हुए बोले—"सरकार, इसकी दशा यथार्थमें अभी बड़ी शोचनीय हो रही है, गत वर्षकी पशुओंकी बीमार में इसे बड़ी क्षति पहुँची है। ग्वालों का धन सम्पत्ति सब कुछ उनके पशु ही होते हैं, वही सब इसके जाते रहे। अब इसके पास जो कुछ है भी, उससे अपने परिवारका पालन-पोषण करता है, आशा है..."

लालासाहब—"बस अब आशा ही क्या की जा सकती है? जब इतनी रकम चुकानेके लिये इसके पास कोई साधन ही नहीं रहा, दीवानजी! यह सब आप हीके कारण हो रहा है, आप हीने इसे रुपये दिलाये थे।"

दीवानजी—"रुपये देनेका साधन इसने कर लिया है सरकार! इसी वर्ष इसका बड़ा लड़का मैट्रिककी परीक्षामें उत्तीर्ण हुआ है, बड़ा परिश्रमी लड़का है कहीं न कहीं नौकरी करके वह भी अवश्य इसकी सहायता करेगा।"

उनके गांवमें यह पहला ही लड़का था जिसने सबसे पहले अंग्रेजीकी दसवीं कक्षा तक शिक्षा पाई थी, इसी कारण जमींदार महोदयको यह जानकर आश्चर्य हुआ। उन्हें ही क्यों वरन् सारे गांववालोंके लिये वह विस्मयका पात्र बना हुआ था। इसीसे आश्चर्यान्वित हो वह पूछ बैठे—"क्यों भुल्लन क्या सचमुच तूने अपने लड़केको दसवीं पास करा दी?"

लालसाहबका ढङ्ग पलटा देख उसके जानमें जान आई और उसने साहस करके उत्तर दिया—"सरकार आपके ही चरणोंके प्रतापसे आज मैं उसे इस योग्य बना सका हूँ कि वह कुछ लिख पढ़ सके। उसे कहीं नौकर कराके अब मैं बहुत जल्द ही आपका कुछ कर्जा चुका देनेकी कोशिश करूंगा।"

लालासाहब बोले—"अच्छा जा, ख्यालसे रुपयेका प्रबन्ध करना। भाई, कुछ न कुछ देते ही रहनेसे कर्जा घटता है।"

भुल्लन—"हुजूर! आपकी प्रजाका मैं भी एक अंश हूँ, आपकी दयासे जब वह इस योग्यताको पहुँचा है तो अब आप ही की कृपासे उसे कहीं नौकरी भी मिल जायगी। लोग कहते है कि आजकल सरकारी नौकरीमें सिफारिश अथवा घूस देनेकी जरूरत पड़ती है। घूसके लिये रुपया कहांसे लाऊंगा मालिक! आप चाहें तो बड़े बड़े अफसरोंसे मिलकर उसे कहीं नौकर करा सकते हैं। आपका बड़ा अहसान मानूंगा सरकार।

दीवानजीने उसे आश्वासन देते हुए कहा—"अब तुम जाओ भुल्लन। सरकार तुम्हारी प्रार्थना पर विचार करेंगे।"

भुल्लनने फिर एक बार पृथ्वीपर लम्बायमान होकर लालासाहब और दीवानजीको अभिवादन किया और दिलमें एक प्रकारकी शान्ति तथा हल्की प्रसन्नताका अनुभव करता हुआ अपने घरकी ओर चल दिया।

इधर उधरके और दो-चार मामले सुनकर लाला साहब दीवानखानेसे उठे और अन्दर चले गये। और लोग भी जो वहां बैठे थे सब एक-एक करके वहांसे नौ दो ग्यारह हुए। अब वहां केवल दीवान विजय सिंह और मुंशी छेदीलाल ही रह गये थे। अतः कुछ क्षण योंही बीतने के बाद उनमें परस्पर इस प्रकार बातें होनी शुरू हुईं।

"कुछ समझमें नहीं आता!" दीवानजीने कहना आरम्भ किया—"जबसे पुष्पलताकी मांका देहान्त हुआ है, तबसे लाला साहबकी काया ही पलट हो गई। जरूरतसे ज्यादा गम्भीर और चिड़चिड़े हो गये हैं; अव्वल तो किसीसे बोलना पसन्द नहीं करते और अगर बोलते हैं भी तो उपेक्षासे। मेरे साथ भी अधिक बात नहीं करते, असामियोंपर भी सख्ती करना शुरू कर दी, यह सब क्या हुआ जा रहा है छेदीलाल! आखिर ऐसा कबतक होता रहेगा?"

मुंशी छेदीलालने अपनी लम्बी गर्दनको एक ओर झुकाके उत्तर दिया—"परमेश्वर जाने दादाजी! उनका यह परिवर्तन तो गजब ढा देगा, मुझे तो उनकी दशापर भी दया आती है। बेचारी पुष्पाका जन्म भी ऐसी मुहूर्तमें हुआ कि एक सालके भीतर ही मांकी ममतासे वंचित

हो गई। भला हो चाचीजीका, जिन्होंने कुमार भैयासे अधिक ध्यान रखके उनका पालन-पोषण किया, नहीं तो न जाने क्या होता ?"

दीवानजी—"होता क्या ? जब तक कुमारकी मां जीवित है, तबतक तो पुष्पापर कोई आंच आती नहीं, हां उसके बाद चाहे कुछ भी होता रहे। मुझे आश्चर्य होता है मुंशीजी ! जिस समय मैं घरमें जाकर उसे देखता हूँ कि वह पुष्पाके आगे अपनी कोखपे जने पुत्र कुमार सिंह तकको भूल जाती है।"

मुंशीजी—"दादाजी, आपको नहीं मालूम बड़ी माताजी और चाचीजी दोनों आपसमें धर्म बहनें थी, इन दोनोंमें परस्पर बड़ा प्रेम था, मैंने स्वयं अपनी आंखसे देखा था कि जब माताजी मरने लगी थी तो उन्होंने पुष्पाको चाचीके हाथों सौंपकर उनसे इस बातका वचन लिया था कि वह आयु पर्यन्त पुष्पाकी रक्षा करेंगी।"

"अरे यह सब तुम्हें कैसे मालूम हुआ ? मुझे तो इसकी जरा भी खबर नहीं।"

वह बोला—"क्षमा करना दादाजी ! यह सब बातें मैंने छिपकर सुनी थी, उस दिन मैं डाक्टरसे दवा लेकर सीधा उनके कमरेकी तरफ जा रहा था कि हठात् चाची और बड़ी माताजीको बातें करते देख मैं कौतूहलवश बात सुननेके लिये दरवाजेपर ही छिपकर खड़ा हो गया और उनकी बातें सुनने लगा। उस समय बड़ी माताजी कह रहीं थीं—बहन मर्दोंका भरोसा नहीं, कौन जाने वे दूसरा विवाह करलें—तू प्रतिज्ञा कर कि मेरी पुत्रीको अन्तिम स्वास तक अपनी समझकर रक्खेगी।"

"इसके बाद ?" उन्होंने पूछा।

"इसके बाद"—उसने पुनः कहना शुरू किया—

"चाचाजी पुष्पाको गोदमें उठाकर प्रतिज्ञाकी और तब मैंने देखा दादाजी, बड़ी माताजीका चेहरा खुशीसे तमतमा उठा कुछ क्षणके लिये उनकी मुख-श्री तेजोमयी हो उठी। मैं उनके रोग ग्रसित जर्जर शरीरमें इस आकस्मिक परिवर्तनको देखकर स्तंभित हो गया।"

दीवानजीने आश्चर्य प्रगट करते हुए कहा—"लो अच्छा; मैं तो अब जाता हूँ तुम सब रजिस्टर और जरूरी कागजात संभालकर आल-मारियोंमें रख देना और ताला लगाकर ताली घरमें दे आना, देखना कोई चीज बाहर न रह जाय"—कहते हुए दीवानजीने अपनी छड़ी उठाई और वहांसे उठकर सीढ़ियोंपरसे होते हुए नीचे उतर गये। सामने एक छोटी-सी बगीची थी, उसीमें जाकर वे टहलने लगे।

उनके चले जानेके बाद छेदीलाल भी अपने स्थानसे उठा और कुछ बेतुका-सा गाना गुनगुनाता हुआ सब रजिस्टर आदि एक-एक करके आलमारियोंमें रखने लगा। जब सब रख चुका तो सारी आल-मारियोंमें भली प्रकार देखभालके ताला लगाया और दीवानखानेका दरवाजा बन्द करके वहांसे चल दिया।

दीवानखानेसे नीचे उतरकर वह सीधा नहरकी तरफ जाने लगा। कुछ दूर तक पानीकी बहावकी तरफ चलते रहनेके बाद उसे एक घाट मिला, जहां गांवकी कुछ स्त्रियां एकत्र होकर पानी भर रही थीं। वहां पहुँचकर छेदीलाल भी घाटकी पक्की दीवारपर खड़ा हो उनकी तरफ ताका झांकी करने लगा। उसके मुखपर इस समय भी वही गाना था जो अबके कुछ क्षण पहले वह दीवानखानेमें गा रहा था। उसके ऊपर

दृष्टि पड़ते ही स्त्री-मण्डलीमें एक खलबली-सी पड़ गयी और उनमें परस्पर कुछ कानाफूसी होने लगी।

एक बोली—"अरे वह देखो उस कलमुहेको, आज फिर वह यहां पहुँच गया।"

दूसरीने धीरेसे कहा—"चुप चुप! जरा देखती रहो वह क्या करता है!"

तीसरी भी इतनेमें बोल पड़ी—"जो आज भी हमें छेड़ा तो सब मिलकर खूब पीटो।"

इस स्त्रीका स्वर कुछ तीव्र होनेके कारण छेदीलालने उसकी सारी बातें सुन लीं। अपने विरुद्ध उसके मुखसे ऐसी बातें सुन वह भला कब चुप रह सकता था! आखिर गांवके बड़े जमींदारका मुंशी था न... "किसकी मजाल है जो मुझे आंख भरके भी देख ले; एक-एकका घर नीलाम करवाके छोड़ूं!"

"ले बहन, गंजेके भी नाखून जम आये! आओ जरा इसकी मरम्मत तो कर लें।" ज्योंही सारी स्त्रियां उसकी तरफको लपकीं त्योंही छेदीलाल वहांसे भाग खड़ा हुआ, किन्तु दुर्भाग्यवश उसका पैर दीवारमें से इतनी जोरके साथ फिसला कि वह धड़ामसे नीचे गिर पड़ा। उसे गिरते देख स्त्रियोंने एक ठहाका मारा और उसे उसी दशामें गिरा हुआ छोड़ सब अपने २ घरोंको चली गयीं। छेदीलाल भी कपड़े झाड़ता हुआ उठा और वहांसे घरकी तरफको लंगड़ाता हुआ चल दिया। यह दशा थी, जमींदार बाबूके उन मुंशीजीकी!

दूसरा परिच्छेद

बारह वर्ष बाद ।

अभी उनका शैशव काल था। समस्त ब्रह्माण्डसे पृथक एक नवीन एवम् अद्भुत संसार, ऐसा था उनका यह शैशव-काल ! यह शैशव था उस तरुण अवस्थावाली युगल-जोड़ीका, जो नहीं जानते थे—जान ही नहीं सकते थे कि संसार किसे कहते हैं और इसका विस्तार कितना है ? इसमें क्या होता है ? कैसे रहा जाता है ? यह सब कुछ नहीं, वे जानते थे केवल खेलना-कूदना खाना और सो जाना भर ही। उनके लिये उनका क्रीड़ा-स्थल ही विश्वका विस्तार था। इसीमें वे विचरते थे, एक लोभ-रहित निःस्वार्थ संसारीके समान। उनके जीवनमें एक आनन्द था, उत्साह था और निर्भीकतासे परिपूर्ण था उनका वह कोमल हृदय ! जिसमें लेशमात्र भी कपटका प्रवेश नहीं था—अहा ! कैसा था वह आनन्ददायक समय ?

शरदका दिवस था और मध्यान्हका समय, जब कि 'कंचन सदन' के पिछली ओर उद्यानमें मौलश्री-वटकी छाया तले यह युवल जोड़ी बैठी खेल रही थी। बड़ी देरसे वे खेल रहे थे और न जाने कब तक बैठे हुए इसी प्रकार खेलते किन्तु किसी बात पर रुष्ट होकर उन दोनोंमें एक पलक झपकी युद्ध उठ खड़ा हुआ और दोनों एक दूसरेको परास्त करने लगे।

"तुम बड़ी नटखठ हो गई हो पुष्पा !"

"और तुम—तुम भी तो ऐसे ही होते जा रहे हो !"

"क्यों मैंने क्या किया ?"

"कुछ किया ही नहीं ? हूँ, बड़ी लड़ना सीख गई हो। मुझे पढ़ते समय फिर तङ्ग कौन किया करता है ?"

" तंग किया करती हूँ या सबक पूछा करती हूँ लो अब वह भी न पूछूंगी।"

"बस नाराज हो गईं—अच्छा चलो अब थोड़ा खेलेंगे।"

"अब हम तुम्हारे साथ नहीं खेलेंगे"—कहकर वहांसे उठकर चल दी। कुमारने दौड़कर उसका कंधा पकड़ लिया और रास्ता रास्ता रोक के बोला—"अच्छा जा कहां रही हो ?"

"मौसीजीके पास तुम्हारी शिकायत करने"—भृकुटी चढ़ाके पुष्पाने उत्तर दिया।

"नहीं नहीं पुष्पा, यह नहीं हो सकता ! मांसे शिकायत करके तुम मुझे पिटवाना चाहती हो ?"

"हां कुमार, तब तुम बहुत जल्दी ठीक हो जाओगे।"

"गलती हो गयी पुष्पा, माफ नहीं करोगी ?"

"अरे तुम्हें तो माफी मांगमी भी नहीं आती। मांफी मांगते समय हाथ जोड़ते हैं, नाक रगड़ते हैं और न जानें क्या क्या करते हैं—तुम्हें तो कुछ भी नहीं मालूम और पढ़ते हो मिशन हाई स्कूल देहरादूनमें।"

"अच्छा हम तुम्हारी पहली बात तो पूरी कर देंगे मगर नाक तो—"

"हूँ—नाक तो नहीं रगड़ेंगे"—पुष्पा बोली—"अच्छा नाक न रगड़ो पहली गलती है हाथ जोड़के माफी मांग लो।"

इच्छा न होते हुए भी बेचारेको हाथ जोड़ने पड़ रहे थे, बड़ी कठिन समस्या थी। किसी अज्ञात आकर्षण शक्तिसे प्रेरित होकर उसके दोनों हाथ ऊपर उठे और दरवाजेके पल्लोंकी भांति आपसमें मिल गये। पुष्पा ने बाजी जीत ली, अपनी विजयपर वह खिल पड़ी शुक्ल-पक्षकी चौदहवीं चांदनीके समान! किन्तु निमेष-मात्रमें वहांका रङ्ग ही पलट गया, किसी के दो मोटे हाथोंने स्पर्श करके कुमारको एकबारगी ही चौंका दिया—घूमके देख भी न पाया था कि हठात् कानोंमें आवाज सुनाई पड़ी—"क्यों कुमार भैय्या, क्या दसवींके इम्तहानकी तय्यारी कर रहे हो?"

कुमार और पुष्पा दोनोंपर ही छेदीलालको इस समय वहां देखकर घड़ों पानी पड़ गया। लज्जासे सकुचाये हुए वे एक दूसरेको देखते ही रह गये; छेदीलाल इसके अतिरिक्त और कुछ न बोला, बल्कि एक ठहाका मारकर दूसरी तरफको चला गया। उसके चले जानेके कुछ देर बाद पुष्पाने कुमारकी अंगुली पकड़कर कहा—

"यह मुंशी फुन्सी बड़ा बदमाश है, न जाने भूतकी तरह कहां छिपा रहता है!"

"पुष्पा! आज तुमने मुझे इसके सामने बहुत शर्मिन्दा किया।"

"उंह कुमार! तुम अभी तक उसी चिन्तामें खड़े हो! तुम्हें नहीं मालुम वह तो पूरा गधा है।"

कुमारकी हंसी निकल गई और बोला—"हां तुम्हें क्या? तुमने तो माफी मंगवाकर ही पीछा छोड़ा, सिर नीचा हुआ जिसका तुम्हारी इच्छा तो पूरी हो ही गई। अब मैं कम्बख्तके आगे कैसे आंख मिला सकूंगा।"

"यह भी कोई कठिन बात है ! देखो ऐसे मिलाना"—कहके पुष्पा अकड़कर खड़ी हुई और अपनी बड़ी २ आंखोंको बाहर निकालके उसकी तरफ घूरने लगी। उसकी ढिठाईपर कुमारको फिर हंसी आ गई और इस बार दोनों कुछ देर तक हंसते रहे फिर पुष्पाने उसे सान्त्वना देते हुए कहा—"कुमार एक रोज तुम भी उसे इसी प्रकार लज्जित करो।"

"मैं भला किस बातपर उसको लज्जित कर सकता हूँ ?" उसने पूछा।

"अरे तुम चन्द्राको भूल गये क्या ?"

"कौन चन्द्रा ? भुल्लन ग्वालेकी लड़की चन्द्रकला ?"

"हां हां वही चन्द्रकला जो रोज हमारे घर पर दूध देने आती है।"

"फिर उससे क्या प्रयोजन ?"

"तुम कुछ भी नहीं जानते ! आजकल यह उसके पीछे बहुत पड़ा हुआ है, किन्तु वह इसे बिल्कुल नहीं चाहती।"

"यह तुम्हें कैसे मालूम हुआ ?"

"एक रोज शामको मैं ऊपर अपने कमरेकी खिड़कीमें बैठी हुई थी। उस समय कुछ अन्धेरा हो चुका था, चन्द्रा जब यहांसे दूध देकर जाने लगी तो उसे बगीचेके दरवाजेपर यही छेदीलाल मिला और कुछ छेड़ने लगा। मैं सच कहती हूँ मैंने अपनी आंखोंसे देखा कि वह दो तीन थप्पड़ मारके फौरन वहांसे भाग गई।"

"ओहो, यह तो तुमने बड़ी अच्छी बात मुझे सुनाई। अब जरूर उसकी ताकमें रहूँगा।"

"देखा मैं कैसी अच्छी हूँ, तुम्हें कैसी बात सुनाई।" पुष्पाने बड़े प्यारसे उसके कंधोंपर झूलते हुए कहा।

"हां तुम बड़ी अच्छी हो ! आओ अब चलें, वह देखो मां खिड़की में बैठी हुई बुला रही है।" दोनों एक दूसरेका हाथ पकड़े हुए मकानकी तरफ भागने लगे और सामनेके दालानसे होते हुए सीढ़ियोंके दरवाजेमें घुसकर गायब हो गये। इस समय दोनों खुश थे मानों बड़ी देरसे कोई घटना ही नहीं घटी थी।

× × ×

ठीक साढ़े पांच बजे सायंकालको जब कि ठण्ढी हवाके झोंके शरीरसे स्पर्श होकर रोमांच पैदा कर रहे थे, लाला कंचनलाल अपने कंचन सदनके ऊपर वाले एक सुसज्जित कमरेमें बैठे किसी गहरी चिन्तामें निमग्न हैं। पश्चिमकी ओर क्षितिज पर छाई हुई लालिमा धीरे-धीरे काली होती जा रही है, दूरसे किसान खेतोंकी डौलपर कदम बढ़ाये अपने घरोंकी ओर जाते हुए दिखाई दे रहे हैं, बाहर पक्षीगण अपने अपने घोंसलोंके आगे वृक्षोंकी टहनियोंपर बैठे भांति २ की बोलियां सुनाकर हृदयमें अद्भुत भावनाका संचार कर रहे हैं।

ऐसे ही समय लाला साहब उस कमरेमें बैठे न जाने किस गुत्थीको सुलझानेमें लगे हुए हैं। उनकी दृष्टि उस सामनेवाली पगडण्डीपर जमी किसी अज्ञात वस्तुको खोज रही हैं, बार-बार उसकी ओर देखना तथा रूमालसे जल्दी २ अपना माथा पोंछना उनके चित्तकी अस्थिरता एवं अशान्तिको स्पष्ट रूपसे प्रकट कर रहे हैं कि वे अवश्य ही किसीको शीघ्र उस ओरसे आते हुए देखना चाहते हैं। ओह प्रतीक्षाकी घड़ियां भी

कितनी दुखदायी होती हैं। इसका अनुमान भुक्त-भोगीके अतिरिक्त दूसरा शायद ही कर सके।

जब किसी ऐसे व्यक्तिके साथ, जिससे हमें विशेष लाभ पहुँचनेकी सम्भावना हो अथवा किसी प्रेमी उपासकको उसकी अत्यन्त प्रिय वस्तु जो चिरकालसे बिछुड़ी हुई हो, पुनः शीघ्र मिलनेकी आशासे उसे उस समय उसकी प्रतीक्षामें कितना उद्विग्न—कितना अधीर होना पड़ता है, यह उसका हृदय ही जानता है। लाला साहबकी भी ठीक वही दशा है। मन की अस्थिरता जब चरम सीमा तक पहुँच जाती है, तब मनुष्यकी सहन शक्ति उसके आगे परास्त हो जाती है और वह उसके लिये असह्य वेदना का रूप धारण कर लेती है।

बुद्धिपर अधिक दबाव पड़नेसे लाला साहब हत-बुद्धि हो स्वयं बुद-बुदाने लगे—"आज क्या हो गया ? उसके आनेमें इतनी देर क्यों हो रही है। अहा। निर्धनकी बेटी होनेपर भी कैसी सुन्दर है वह! पूरे पन्द्रह सालसे मैं उसे देखता आ रहा हूँ—पहले क्या थी ? बच्ची, निरी बच्ची ही तो। और अब वही निर्दोष बालिका। क्यासे क्या हो गई ! जिस किसीकी दृष्टि उसपर पड़ती है, वही उसके सौन्दर्यकी प्रशंसा किये बिना नहीं रहता, मानों विधाताने स्वयं उसे अपने हाथोंसे बनाया है। यौवन उसके अङ्ग प्रति अङ्गपर अपना प्रभाव डाले पड़ा है—ओफ ! कितना भोला मुखड़ा है उसका ! जब पहली बार मैंने अपनी इच्छा कही तो संकुचित हो कितने भोलेपनसे उसने उत्तर दिया था कि—"पिताजी से मालूम कर लें।" श ह ह ह, पगलीको इतना भी नहीं मालूम कि

रुपयेके आगे एक गरीब पिताकी इच्छा कब तक ठहर सकती है ! भोली है वह, एकदम भोली ! कुछ भी तो नहीं जानतीं ।"

कुछ देरके लिये उनके चेहरेपर गम्भीरता छा गई और वे कुछ सोचने लगे, किन्तु निमेष मात्रमें ही उनकी यह दशा बदल गयी और उन्होंने पुनः कहना आरम्भ किया—"क्या यह उचित न होगा ! उंह, अनुचित ही इसमें क्या होगा ? पुष्पाकी मांका ख्याल था कि दूसरा विवाह करनेसे पुष्पाको कष्ट मिलेगा—अब उसकी भी चिन्ता नहीं, तेरह वर्षके लगभग वह पहुँच चुकी है, सयानी होनेपर स्वयं ही अपनी रक्षा कर लेगी और फिर कुमारकी मांने तो उसके मनसे 'मां' का नाम ही भुला दिया, केवल 'मौसी' नाम ही उसके लिये मांसे बढ़कर प्रिय वस्तु है । जब वह हर प्रकारसे सुखी है तो फिर मुझे ही क्यों इस सुखसे वंचित रहना चाहिये !"

"अभी मेरी उम्र ही कौन ज्यादा हो गई है जो संसारके सुखोंसे एक बारगी ही विरक्त हो जाऊं ? क्या साढ़े अड़तालिस वर्षके स्वस्थ मनुष्यका विवाह पन्द्रह वर्षकी नवयुवतीसे होना ठीक नहीं ! कौन कह सकता है—यह सब स्वास्थ्यपर निर्भर है ! यदि समाज अथवा इसकी बागडोर संभालनेवाले वे द्वेषी नेता, जो अधिक आयुमें विवाह करनेवालोंके विरुद्ध बड़ेसे बड़ा आन्दोलन करनेमें नहीं हिचकिचाते—तनिक भी अपनी बुद्धि पर जोर दें तो शीघ्र ही उनकी समझमें आ जावे कि यदि मनुष्य निरोग एवम् हर प्रकारसे स्वस्थ है तो अस्सी वर्षकी आयुमें भी उसका विवाह होना कोई पाप नहीं, विपरीत इसके पचीस वर्षका रोग-ग्रसित क्षीण शरीरवाला नामधारी युवकका विवाह न होना मेरे विचारसे कहीं अधिक

शुभ है। मैं अपनी इच्छाकी पूर्तिके लिये अवश्य कोशिश करूंगा, संसारके लोग टीका-टिप्पणी करें तो करने दो, मुझे उससे क्या प्रयोजन? जब महर्षि पराशरने कामोत्तेजित होकर बृद्धावस्थामें भी अपनी इच्छानुकूल भोग-विलास किया तो हमें उनका अनुकरण करनेमें कौन पाप है?"

मानव प्रकृति शास्त्रोंके शुष्क उपदेशोंसे अधिक बलवती है। इसी लिये जब प्रकृति और आर्ष वाक्योंमें परस्पर विद्रोह उत्पन्न हो जाता है, तब सदा ही विजय होती है प्रवृत्ति की। विश्वका वर्तमान तथा अतीत इतिहास इस बातका साक्षी है। लाला साहबके हृदयमें इस समय विचारोंका एक भीषण संग्राम मचा हुआ था, एक ओर अपनी तथा उसकी आयुमें आकाश पृथ्वीका अन्तर तथा समाजका भय—दूसरी ओर नये विवाहके नये आनन्दकी बलवती इच्छा! उनकी स्थिति इस समय वास्तवमें डांवाडोल हो रही थी, अपना कर्त्तव्य स्थिर करनेकी उनमें शक्ति ही नहीं रह गई थी। इसी उधेड़-बुनमें वे और भी न जाने कब तक बैठे रहते, किन्तु उसी समय नीचेके कमरेसे उन्हें पुष्पाकी आवाज सुनाई दी जो किसीसे कह रही थी—

"क्यों री चन्द्रा! तू तो उस रोज कह रही थी न, तेरा विवाह होने वाला है?"

"हां जीजी, मैं झूठ थोड़े ही कह रही थी—पिताजी आज पांच रोज से गये हुए हैं मेरा वर तलाश..."

"तेरा वर तलाश करने! वह बोली "हूँ, तब तो खूब मौज में कट रही होगी क्यों? विवाहके लड्डू खिलावेगी न?"

"जाओ जीजी, तुम्हें हर घड़ी दिल्लगी ही सूझती है।" चन्द्राने लजाते हुए कहा।

इतनेमें लाला साहबने ऊपरसे पूछा– "पुष्पा कौन है तेरे पास बेटी ?"

उसने उत्तर दिया—"चन्द्रा है पिताजी, भुल्लन ग्वालेकी लड़की।"

लाला साहबने कुछ क्षण ठहरके कहा—"अच्छा उसे जरा मेरे पास भेज दे।" थोड़ी देरमें एक पन्द्रह वर्षकी युवतीको साथ लिये हुए पुष्पाने उनके कमरेमें प्रवेश किया। पुष्पाको देखकर वे कुछ भृकुटी चढ़ाके बोले—"तू पढ़ती लिखती नहीं पुष्पा—जा, इसे यहीं छोड़ कर तू अपना काम कर, मैं जरा इससे दूधका हिसाब समझूंगा।"

पुष्पाको उनकी यह बात लगी तो बहुत बुरी, किन्तु कर क्या सकती थी बेचारी ? आखिर पिताजी आज्ञा तो माननी ही पड़ती; इच्छा न रहते हुए भी उसे चन्द्राको छोड़कर वहांसे जाना पड़ा। यद्यपि चन्द्रा के वस्त्र मैले और सिरके बाल जिधर तिधर बिखरे हुए थे, तथापि सौन्दर्य उसके अङ्ग-अंगसे फूट रहा था। वह सुन्दरी थी, वास्तवमें अनुपम सुन्दरी ! पुष्पाके चले जानेके बाद जब चन्द्रा अकेली रह गई तो लाला साहब मुस्कराते हुए उसकी ओर बढ़े और उसका हाथ अपने हाथमें थामते हुए बोले—"क्यों चन्द्रा आज तो तूने बहुत देर लगाई ?"

सकुचाई हुई चन्द्राने लज्जासे और भी सिकुड़ कर उत्तर दिया—"घरका सारा काम मुझे ही करना पड़ता है इसी लिये कभी २ इतनी देर हो जाती है, घरका काम खतम न होने पर पिताजी और भैय्याकी मार खानी पड़ती है।"

"ओह, बड़े जालिम हैं तुम्हारे बाप और भाई ! इतने कोमल

शरीर पर हाथ उठाते हुए उन्हें तनिक भी दया नहीं आती।" लाला साहबने सहानुभूति दिखाते हुए चन्द्राके हृदय पर अपने दयालु स्वभाव की छाप जमानेका प्रयत्न किया।

चन्द्राने मीठी मुस्कानसे उनकी ओर अपनी तिरछी चितवन से देखते हुए कहा—"कुन्दनपुरके जमींदार जिन्हें गांवके लोग प्रायः कठोर और जालिमके नामसे पुकारते हैं, मेरी दशा पर इतनी दया करेंगे यह मैं स्वप्नमें भी नहीं सोच सकती थी। मेरे घरके काम धंधा न करने पर यदि मैं अपने बाप भाईसे मार भी खाऊं तो इससे आपको क्या प्रयोजन ? आखिर आप मेरी दीन अवस्था पर इतने दुखी क्यों हो जाते हैं ?"

"आह यह न पूछो चन्द्रा ! मैं तुम्हें कितना प्यार करने लग गया हूँ, यह मेरा दिल ही जानता है; तुम क्या समझ सकती हो कि रात-रात भर मैं तुम्हारे ही बारेमें क्या २ सोचा करता हूँ। तुम नहीं जान सकती, जान ही कैसे सकती हो ? जब तुम्हारे मनमें इसे जाननेकी इच्छा ही नहीं होती—किन्तु मैं स्पष्ट रूपसे तुम्हें बता देना चाहता हूँ कि चाहे कुछ भी हो मैं अपनी इच्छा अवश्य पूरी करूंगा, मेरे काममें बाधा डालने वाला इस संसारमें कोई नहीं है। तुम्हें प्राप्त करनेमें मुझे चाहे जितना मूल्य इसके लिये देना पड़े मैं तुम्हे अवश्य प्राप्त करूंगा—बोलो, इस हृदय मन्दिरकी शोभा बढ़ानेके लिये तैय्यार हो न ?"

चन्द्राने सिर झुकाये हुए ही उत्तर दिया—"मुझसे आप क्या

पूछते हैं ? मैं तो आपके चरणोंकी एक तुच्छ दासीके समान हूँ" —लाला साहबने हथेलीसे उसकी ठोड़ी ऊपर उठाते हुए कहा—

"दासी नहीं इस दिलकी रानी, कहो चन्द्रा! यह धन सम्पत्ति और इतनी बड़ी जमींदारी, सब कुछ तुम्हारे एक इशारे पर न्योछावर करने को तय्यार हूँ। यद्यपि तुम एक साधारण ग्वालेकी बेटी हो, तुम्हें घर में लानेसे तमाम गांव मेरे खिलाफ आवाज निकालेगा; मेरे इस कार्यसे अस्सी प्रतिशत लोग मुझे घृणाकी दृष्टिसे देखने लगेंगे, परन्तु मुझे इसकी जरा भी चिन्ता नहीं। संसारके समस्त प्राणी भी यदि एक स्वर से मिलकर मेरी इच्छाके विरुद्ध आवाज निकालें तो भी मैं अपने इस दृढ़ संकल्पको नहीं बदल सकता।"

वह बोली—"परन्तु यदि पिताजी और भैय्या इस सम्बन्धसे सहमत न हुए तब ?"

उन्होंने लापरवाहीसे उत्तर दिया—"उंह, मेरी इच्छाके विरुद्ध वे लोग कोई काम करेंगे ? ऐसी बहुत कम आशा है। चांदीके रुपयोंका लोभ लम्बी चौड़ी आंखवालोंको भी अंधा बना देता है।"

चन्द्राने कुछ सोच कर कहा—"ऐसा होना मुझे तो एक प्रकारसे असम्भव सा ही दीखता है क्योंकि वे लोग अपनी जातिके बड़े पक्षपाती हैं और यह सम्बन्ध हो जाने पर वे बिरादरीसे निकाल दिये जायेंगे जिसे वे किसी भी दशामें मंजूर नहीं कर सकते।"

लाला साहबने कहा - "परन्तु उन्हें अपनी बिरादरीमें रह कर करना भी क्या है ?"

उसने उत्तर दिया—"क्यों नहीं करना है ? आखिर अभी मेरे

भाईका विवाह होना भी तो बाकी है। मेरा आपके साथ सम्बन्ध हो जाने पर फिर बिरादरी वालोंमेंसे कौन उन्हें अपनी लड़की देनेको राजी हो जायेगा ?

"तुम निरी पगली हो" लाला साहबने उसकी बातसे खीज कर कहा—"लड़कियोंका विवाह होना तो किसी हद तक कुछ कठिन भी होता है किन्तु लड़कोंका विवाह तो बड़ी आसानीसे हो जाता है। केवल आवश्यकता होती है, उस वक्त कुछ रुपयों की। मेरे साथ तुम्हारा विवाह हो जाने पर उसकी यह कमी भी पूरी हो जायगी क्यों ?"

"हां, मेरा भाई फिर तो आपका···" आगे वह कुछ कह न सकी और लजाकर चुप हो रही।

"साला होगा न !" लाला साहबने उसकी बातको पूरी करके कमर में एक चुटकी भर ली, जिससे चन्द्रा उछल पड़ी, उसके दोनों हाथ हठात् ही ऊपर उठ गये जिन्हें नीचे गिरनेसे पहले ही जमींदार महोदयके कंधोंने रोक लिया। वह इस समय पूर्ण-रूपसे उनके बाहु-पाशमें जकड़ी हुई थी और उनके शुष्क होंठ उसके रक्तवर्ण कपोलों का मधुर रस-पान कर रहे थे। चन्द्रा भी इस समय किसी आनन्दका अनुभव कर रही थी अथवा नहीं ? यह तो वही जाने, किन्तु थी वह कुछ सन्तुष्ट ही ! अपने प्रेमीकी प्रौढ़ावस्था देखकर वह खुश थी अथवा उनकी विपुल धन सम्पत्ति की भावी आधीश्वरी होने के मधुर स्वप्नने उसे इतना मदहोश बना दिया था, इसका अन्दाजा लगाना इस समय एकान्त रूपसे कठिन है। अस्तु कुछ भी हो—यह था स्वार्थी-संसारकी अद्भुत लीलाओंका रहस्यमय नग्न दृश्य !

———

तीसरा परिच्छेद

राजपुर रोड पर 'फिन्न कम्पनी' से कोई एकसौ तीस गज आगे चलने पर बाईं ओर कैपीटल सिनेमा आता है, ठीक उसके सामने सड़ककी दूसरी तरफ 'दून एलेक्ट्रिक बेल्डिंग कम्पनी' का दफ्तर है। मैनेजरके अतिरिक्त इसमें चार क्लर्क, एक हेड क्लर्क, तीन चपरासी तथा कई अन्य कर्मचारी काम करते हैं। इस फर्मकी इमारत यद्यपि बाहरसे देखने पर तो साधारण सी ही मालूम देती है, परन्तु वास्तवमें वह भीतरसे बड़ी पेंचदार और भूल भुलैय्याकी तरह बनी हुई है। कई कमरे, दालान और सीढ़ियां पार करनेके बाद एक छोटा-सा मैदान आता है जिसके चारों तरफ ऊंची-ऊंची दीवारें बनी हैं परन्तु दीवारों और इमारतकी ईंटे देखनेसे साफ मालूम होता है कि इमारत बनने से बहुत समय पीछे यह दीवारें बनाई गई हैं। सम्भवतः जबसे बेल्डिंग कम्पनी यहां स्थापित हुई है, तभीसे दीवारोंका मैदान के चारों तरफ होना अनिवार्य सिद्ध हुआ; मैदानके एक भागमें वह विचित्र इमारत बनी है और तीन तरफ ऊंची दीवारें—जिनके साथ-साथ कई प्रकारके फल और फूलोंसे लदे हुए वृक्ष खड़े हैं। मैदानके ठीक बीचमें एक बड़ासा हौज बना हुआ है जिसके भीतर दो मोटे नलके नीचे तक गये हुए हैं। यहांसे चारों ओर दृष्टि घुमाकर देखनेसे वह स्थान ठीक एक छोटे किलेके सदृश प्रतीत होता है। हौजके भीतर उतरनेके लिये लोहेकी सीढ़ियां लगी हैं जो लगभग तीस फिट नीचे जाकर सीमेन्टके

छोटे चबूतरेपर टिकी हुई हैं। इसके पास ही बिजलीके दो बड़े डायनमों फिट हैं, इन्हींमेंसे होकर वे दोनों मोटे नलके ऊपर चले गये है जिनका विवरण क्रमशः आगे चलकर मालूम होगा।

हेड क्लर्क रामूबाबूकी उम्र यद्यपि अभी चौबीस वर्षसे अधिक नहीं है तो भी उस कम्पनीके मालिक और मैनेजर उन्हें आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। गत तीन वर्षोंसे वे इस कम्पनीमें कार्य कर रहे हैं, किन्तु इस अल्प समयमें हीं उन्होंने आशातीत सफलता प्राप्त करली और एक साधारण क्लर्कसे हेड क्लर्ककी पदवीपर उन्नति करनेके अतिरिक्त उनकी ख्याति भी दिनों दिन बढ़ती जा रही है। वह परिश्रमी हैं, उत्साही हैं और पुरुषार्थ है उनके रोम-रोममें व्याप्त शरीरमें रक्तके समान। ईमानदारी और नेकचलनीसे काम करनेके कारण ही आज अपने मालिकोंकी दृष्टिमें एक विश्वस्त कर्मचारी गिने जाने लगे हैं। इतना ही नहीं अपितु वे लोग अब इन्हें अपना दाहिना बाजू समझने लगे हैं। कोई भी गुप्त से गुप्त जटिल काम बिना इनका परामर्श लिये हुए नहीं किया जाता। उनकी इस उन्नतिका मुख्य कारण एक और भी है, और वह है कुन्दनपुरके जमींदार महोदयकी सिफारिशका परिणाम। लाला कंचनलाल ही की विशेष कृपा होनेके कारण आज रामूबाबूको यह उन्नति तथा ख्याति प्राप्त हुई। नहीं तो कहां भुल्लन ग्वाले जैसे साधारण व्यक्तिका लड़का रामदीन, और कहां अब एक सुप्रसिद्ध कम्पनीका हेड क्लर्क रामूबाबू!

नित्यकी भांति आज भी ठीक साढ़े नौ बजे दफ्तर खुला और दस बजे तक सब कर्मचारी अपने-अपने काममें जुट गये। क्लर्कोंके कमरेके बगलमें मैनेजर साहबका कमरा था। छतमें लगा हुआ बिजलीका पंखा

भर्राटेके साथ अपनी पूरी चालसे चल रहा था, हवाके वेगसे मेजपर रक्खे हुए कागज 'फर-फर' ध्वनिसे मैनेजर साहबके कानोंमें राग अलाप रहे थे। मैनेजर साहबने अभी आकर सरसरी तौरपर अपने आजके कार्य पर दृष्टि डाली थी कि चपरासीने आकर आजकी डाकका मेजपर ढेर लगा दिया। नित्यकी डाक ही सबसे पहले देखना आवश्यक होता है इसलिये और काम छोड़ पहले उन्होंने चिठ्ठियां देखनी शुरू कीं और जल्दी-जल्दी सब डाक देख डाली। कोई मुश्किलसे आधा घण्टा ही उन्हें इस काममें लगा होगा परन्तु बहुत मोटा और तामसी शरीर होनेके कारण उन्हें इतने हीमें आलस्यने आ घेरा और अन्तिम चिठ्ठीको बिना पढ़े ही मेजपर फेंककर कुर्सीसे पीठ लगाके लम्बी अंगड़ाई ली और लापरवाहीसे क्लर्कों की कमरेकी तरफ मुंह करके आवाज दी—"रामूबाबू क्या कर रहे हो?"

उत्तर मिला—"लाहौरकी जेलानी फैक्टरीके पत्रोत्तरका ड्राफ्ट बना रहा हूँ जनाब!"

वे बोले—"अरे भाई कामके लिये तो सारा दिन पड़ा है, जरा यहां आओ, कुछ मतलबकी बातें करें।"

रामूबाबू उठकर अपने हाथमें एक छपा हुआ लेटर-पेपर लिये हुए मैनेजर साहबके कमरेमें आये और उनके सामनेवाली कुरसीपर बैठकर उनके पुनः बोलनेकी प्रतीक्षा करने लगे, परन्तु उन्हें बिलकुल ही चुप देखकर अन्तमें स्वयं ही बात उठानेकी गरजसे बोले—"आजकी डाक मिलनेसे पहले मैंने सोचा कि कलकी बची हुई चिठ्ठियोंका जवाब ही दे दूं। यों तो कलकी डाकका काम सब कल ही खतम हो गया था, केवल

जेलानी फैक्टरीका जबाब कुछ कठिन-सा होनेके कारण कल नहीं दिया जा सका था सो आज उनको भी लिख दिया है।"

"क्या लिख दिया है उन बेईमानोंको? कम्बख्त बड़े चालाक मालूम देते हैं ये लोग तो!"

रामूबाबूके चेहरेपर मधुर-हास्यकी रेखा दौड़ गई, किन्तु निमेष मात्र हीमें उनका यह भाव जाता रहा और वे पूर्ववत गम्भीर होकर लेटर पेपर फैलाकर पढ़ने लगे। उसमें लिखा था—

श्रीमान महोदय!

आपकी भेजी हुई दोनों औषधियोंके नमूने प्राप्त हो चुके थे, इसकी सूचना आपको पहले दी जा चुकी है। हमने उन दोनोंका प्रयोग अपने काचके नये आविष्कारपर किया—परीक्षा सफल रही, किन्तु आपकी एक औषधिमें अभी सोडा बाई...की कमी है कृपया उसे बढ़ाकर एक सौ तीस डिग्रीका बनाकर भेजें और साथ ही दूसरी औषधिमें चार डिग्री एमोनिया कम कर दें। आशा है इस बार दोनों औषधियां आप हमारे लिखे अनुसार ही ठीक तैय्यार कराके भिजवायेंगे।

हमें पूर्ण विश्वास है यदि आपकी तरफसे कोई गड़बड़ी न हुई तो हमारा आपके साथ यह सम्बन्ध चिर-कालके लिये स्थापित हो जायेगा। हमें इनकी आवश्यकता है और हम एक बड़ी संख्यामें आपसे ये दोनों चीजें प्रतिमास मंगाते रहेंगे। हमारे साथ इनका कन्ट्रैक्ट कर लेने पर आपको किसी प्रकार हानि पहुँचनेकी संभावना नहीं, यह आपको भली भांति ज्ञात हो गया होगा। इससे न केवल हमारी ही ख्याति

बढ़ेगी बल्कि आपकी फेक्ट्रीको भी विशेष लाभ तथा उन्नत होनेका सुअवसर मिलेगा।

जमानतका पांच हजार रुपया शीघ्र जमा करा देवें अन्यथा दूसरी फैक्ट्रीसे बातचीत हो जाने पर आपको भारी क्षति पहुँचनेका भय है। आपकी ईमानदारी और कार्य कुशलता पर मुग्ध होकर ही हमारे मालिकोंने आपसे सम्बन्ध बनाये रखनेका निश्चय किया है। ध्यान रहे, शर्तें भंग होनेपर आपकी इतनी बड़ी रकम पर पानी फिर जानेका डर है अतः खूब समझ बूझकर ही हमारी शर्तों पर हस्ताक्षर करें। नियमानुसार काम करते रहने ही से व्यापारकी उन्नति होती है, यह बात किसी भी व्यापारीको नहीं भूलनी चाहिये। शेष सब ठीक है, पत्रोत्तर शीघ्र दें!

आपके शुभचिंतक

मेसर्स दून एलेक्ट्रिक बेल्डिंग कम्पनी।

आद्योपांत सब सुन लेने पर मैनेजर साहबने एक संतोष भरी निश्वास छोड़ा और बोले—"ठीक है रामू बाबू! अब देखना है कि यह पंजाबी लोग कहां तक अपनी बातके धनी होते हैं।"

"मेरा ख्याल है कि वह लोग हमारी इच्छानुसार माल सप्लाई नहीं कर सकेंगे।" रामूबाबूने जवाब दिया।

"तब तो पौबारा हैं बाबू! जमानतकी वह बड़ी रकम जो हमने तलब की है, सबकी सब अपने हाथमें होगी। क्यों? कैसा रहा हमारा तीर?" गर्वसे फूले हुए मैनेजर साहबने कहा।

"ठीक निशाने पर बैठेगा जनाब!" रामूबाबूने कुछ चंचल दृष्टिसे

मैनेजरकी ओर देखते हुए कहा। मैनेजर साहबको अपनी बुद्धि पर बड़ा भरोसा था, इसी बुद्धिमत्ताके कारण उन्होंने थोड़े समयमें ही इस कम्पनीको उन्नतिके उच्चतम् शिखरपर पहुँचा दिया था। पहले इसी फर्मकी यह दशा थी कि नौकरोंका वेतन भी बड़ी कठिनाईसे निकलता था और अब फर्मकी मासिक आय, खर्च निकाल कर कमसे कम बीस हजार के लगभग होने लगी, यह सब उन्हींकी बुद्धि तथा परिश्रमका परिणाम था। वे थे भी वास्तवमें ऐसे ही।

उसी धुनमें कुरसी पर झूलते हुए वे बोले—"ओह, मुझे पूरा विश्वास है वे हमारी मांगको कभी पूरा नहीं कर सकते! कितना भोला शिकार हाथ आया है, मुझे उनकी मूर्खता पर हंसी भी आती है और दया भी।"

"किन्तु इतनी बड़ी संख्यामें वे औषधियां हमारे किस काम आवेंगी?" रामूबाबूने कुछ सोचकर कहा।

"तुम अभी व्यापारके दांव पेंच क्या जानो मिस्टर!" मैनेजर साहबने उनके कंधे पर थपकी देके कहना शुरू किया—"रुपया पैदा करना कोई साधारण काम नहीं है। दुनियाके लोग बड़े बुद्धिमान और चालाक होते जा रहे हैं, उन्हीं में से कुछ ऐसे भाग्यशाली लोग जो उनसे कहीं अधिक तीव्र-बुद्धिके तथा सतर्क होते हैं—अपनी सूक्ष्म-दृष्टि से रुपये पैदा करनेके नये २ तरीके निकाल लेते हैं, वही लोग संसारमें वास्तविक ऐश्वर्यका उपभोग करते हैं।"

"हूँ, ऐसे ही भाग्यशालियोंमें से एक आप भी हैं"—रामू बाबूने मनही मनमें कहा और चुपचाप उनकी तरफ दृष्टि जमाये देखते

रहे, उन्हें चुप देख मैनेजर साहब ने पुनः कहना आरम्भ कर दिया—

"क्यों, है न युक्तिसंगत बात ! अरे भाई बिना चालाकीका पार्ट अदा किए रुपया मिलना आजकल ठीक रुपयेका स्वप्न देखनेके बराबर है। हाथ पैर हिलाये बगैर रोटी मिलनी भी दूर हो जाती है फिर रुपया मिलना तो दूर रहा—याद रक्खो, अगर तुम इसी तरह ईमानदारी से मेरा साथ देते चले जाओगे तो एक दिन अवश्य आदमी बन जाओगे। सोचो अपनी उस दिनकी हालतको, जबकि तुम मेरे यहां आये थे नौकरी करने, और ध्यान करो अपनी आजकी पोजीशन पर—क्या हो ? अपने देशकी एक सुप्रसिद्ध फर्मके हेड क्लर्क ! पृथ्वी आकाश का अन्तर !!"

उसी झोंकमें मैनेजर साहब कहते चले गये—"इतना ही नहीं, जीवनके इस विस्तृत मैदानमें उन्नतिके उच्चतम् शिखर तक पहुँचनेके लिये तुम्हें अभी एक इससे भी अच्छा और सुगम शुभ अवसर हाथ आनेवाला है—इसे अपनी गलतीसे खो न देना। संसार क्या है ? प्रकृतिकी अद्भुत रचनाओंका एकमात्र रङ्गमंच ! हम इस रंगमंच पर आते हैं केवल अपनी २ कलाओंको परीक्षाकी कसौटीपर तौलनेके लिये। अपने स्वार्थके लिये सब मरते हैं, सभी अपने अपने मतलबकी बात करना चाहते हैं—फिर तुम्हीं इस ओरसे क्यों विरक्त हो ? तुम भी क्यों नहीं अपना उल्लू सीधा करनेके लिये हाथ पैर हिलाते ? मौका आया है, इसे हाथसे न जाने दो।"

रामूबाबूने विस्मयान्वित हो उनसे पूछा—"आखिर इतनी लम्बी

भूमिका बांधनेसे आपका क्या प्रयोजन ? अपने स्वार्थकी बात सुननेके लिये कौन नहीं उत्सुक होगा ! मैं नहीं जान सका कि मेरी उन्नतिका वह कौन-सा मौका हाथ आया है। क्या आप स्पष्ट-रूपसे उसे बता देनेका कष्ट नहीं करेंगे।"

"हताश न होओ मैं अभी सब बताता हूँ"—मैनेजर साहबने सान्त्वना देते हुए पुनः कहना आरम्भ किया—"तुम्हारे गांवके जमींदार बाबू लाला कंचनलाल दूसरा विवाह करना चाहते हैं और वे..."

रामूबाबूने बीच ही में खुशीसे उछल कर कहा—"तब तो खूब लड्डू वगैरह की बहार होगी।"

मैनेजर साहब बोले—"अजी लड्डू ही क्यों, अब तो पांचो घी में हैं पांचों !"

रामूबाबू कुछ विरक्त होके बोले—"अजी हमारी क्यों घी में होंगी। हमें तो केवल इतना ही है कि उन्हींके गांवमें रहनेके कारण, विवाहोत्सव पर एक बड़ा समारोह देखनेको अवश्य मिलेगा और मिलेगी साथमें खानेको मिठाई। परन्तु हां, यह तो बताइये सम्बन्ध कहांसे स्थिर हुआ है ?"

वे बोले—"कहीं बाहर नहीं तुम्हारे ही गांवमें—सुनो, वह तुम्हारी बहन चन्द्राको चाहते हैं और उसीको अपनी भावी-पत्नी बनाना चाहते हैं ; क्यों क्या राय है तुम्हारी ?"

रामूबाबूने कुछ क्रुद्ध स्वरमें उत्तर दिया—"क्या कह रहे हैं आप ! पचास वर्षके वह बूढ़े और मेरी बहनसे विवाह करेंगे—कहते भी लज्जा न आई !"

"पागल न बनो, अक्ल पर जोर देकर सोचो—जरा सी गलती जीवन भरके लिये कांटा हो जाती है" ; मैनेजर साहबने उसे समझाते हुए कहा—"उन्होंने तुम्हारे साथ कितने उपकार किये हैं। पहले पांच सौ रुपया देकर तुम्हारे पिताको ऐसी हीन-दशामें सहायता पहुँचाई, जब कि तुम लोगोंके पालन-पोषण करनेका उसके पास कोई साधन ही शेष नहीं रह गया था। उनके इस उपकारका भार न केवल उस वृद्ध पर ही है, बल्कि तुम भी उसके लिये आभारी हो ; इस लिये अब तुम्हारा भी कर्तव्य हो जाता है कि उनकी इच्छाकी अवहेलना न करो। उन्हीं की कृपासे आज तुम इस पदवीको प्राप्त हुए हो, फिर भी क्या तुम इन अगणित उपकारोंके बदले उनकी एक ही इच्छासे जी चुरा जाओगे ?"

"इसमें सन्देह नहीं कि हमारे पिता उनके बड़े आभारी हैं"—रामूबाबूने पेपरवेट पर दृष्टि जमाये हुए कहा—"पिता ही क्यों ? हमारा सारा परिवार ही उनके उपकारोंसे बाल-बाल बंधा हुआ है। मगर आंखों देखते तो उसे कुएं में नहीं ढकेला जा सकता; आखिर उस बेचारीका कोमल हृदय क्या कहेगा ?"

"ओह, यह सोचनेका विषय नहीं है। अपने देशमें कहीं लड़कियां भी स्वयं अपना वर तलाश करती हैं; जो वर माता-पिताने उचित समझा उसीके साथ विवाह कर दिया।"

"और जहां चाहा उस असहाया निर्बोध बालिकाको ढकेल दिया !" रामूने कुछ भौंहें सिकोड़ कर कहा—"यह सरासर अन्याय है जनाब ! मैं लड़कियोंके प्रति इस अत्याचारके सख्त खिलाफ हूँ।"

मैनेजर साहब खीज कर बोले—"तब मुझे कहना पड़ेगा कि तुम्हारे

अन्दर सोचने की शक्ति नहीं है या अगर है भी तो उसे तुम्हारे दुर्भाग्य ने इस समय लुप्तप्राय कर दिया है। अरे, अपने स्वार्थके लिये कौन नहीं करता ? कुछ सोचो, तुम भी अब पूरे जवान हो गये हो—यही दिन हैं खेलने खाने तथा संसारकी रंग रलियां मनाने के ! तुम्हें मालूम होना चाहिये कि चन्द्राका विवाह जमींदार बाबूके साथ होते ही तुम्हारा विवाह भी किसी अच्छे घरकी लड़कीके साथ होते कोई देर नहीं लगेगी। घरकी दरिद्रता सब दूर हो जायगी समझे ! और फिर तुम एक बड़े आदमी हो जाओगे, लोग तुम्हारी इज्जत करेंगे, गांवके बच्चे, बूढ़े और जवान सभी तुम्हारे आधीन होंगे।"

अब मैनेजर साहबकी लच्छेदार बातोंका जादू रामूबाबू पर क्रमशः चलता जारहा था ; भविष्यके सुखकी कल्पना करके वे आनन्दके श्रोतमें डूबने उतराने लगे। अपनी आर्थिक दशा सुधारनेका यह सुयोग्य हाथ आया है—इसे व्यर्थही खो देना तो कोई बुद्धिमानी नहीं, इन्हीं विचारों से प्रेरित हो उनके चित्तकी अवस्था स्थिर न रह सकी ; किन्तु साथ ही हृदयके कोनेमें छिपे हुए सत्यकी एक तीक्ष्ण ज्वालाने उनके समस्त आनन्द एवम् सुखोंकी कल्पनाको भस्मीभूत कर दिया और वे हताश मन से बोल पड़े—

"नहीं नहीं मैनेजर साहब, यह तो बड़ी लज्जा-जनक बात होगी। लोग क्या कहेंगे ? जन्म भूमिमें रहना भी दूभर हो जायगा, सब हसेंगे, रास्ते चलते हमारा मजाक उड़ाया जायगा, समाज हम पर थूकेगा, चारों ओरसे लांछना और धिक्कारकी बौछार हमारे ऊपर पड़ने लगेंगी।

सब एक स्वरमें चिल्ला उठेंगे कि रुपयेके लोभसे लड़की बूढ़े जमींदारको बेच दी। ना साहब हमसे तो यह नहीं सुना जायगा।"

"गधे हो पूरे"—मैनेजरने झुंझलाके कहा—"बातकी तह तक पहुँचनेकी कोशिश तो करते नहीं हो। अरे भाई, लोग बकेंगे तो बकने दो, उनके बकनेसे होता ही क्या है? रुपयेमें बड़ी ताकत है, धनी होने पर कोई तुम्हारी तरफ आंख उठा कर भी नहीं देख सकता। मेरी बातोंको अवहेलनामें न टालो रामूबाबू! वरना उम्र भर हाथ मलना पड़ेगा—उन्नतिका स्वर्ण द्वार तुम्हारे सामने खुला पड़ा है, यहां तक पहुँचनेके बाद अब पीछे न होओ। भाग्यवान और धनाढ्य बननेके लिये धनी मानी पुरुषोंसे घनिष्ठता बढ़ानेकी विशेष आवश्यकता पड़ती है।"

"बहुत अच्छा, मैं आपकी आज्ञानुसार इस रायसे सहमत हूँ"—रामूबाबूने अपना निर्णय सुनाते हुए कहा—"यद्यपि इस मामलेमें स्वतन्त्रता पूर्वक मुझे अपनी अनुमति देनेका कोई अधिकार नहीं है, तथापि मैं कोशिश करूंगा कि पिताजी भी इस सम्बन्धसे राजी हो जांय। मुझे आशा है कि वे मेरे कथनानुसार अवश्य इस सम्बन्धको मंजूर कर लेंगे और साथ ही चन्द्रा भी मेरी बातको नहीं टाल सकती।"

अब से कुछ क्षण पहले जिस हृदयमें सत्य-असत्य, न्याय-अन्याय, स्वार्थ और परमार्थका परस्पर द्वन्द मच रहा था, जो दिल सत्-मार्ग पर अटल था, जो नहीं चाहता था कि एक अबला पर ऐसा अत्याचार किया जाय, चांदीके कुछ गिने हुए टुकड़ोंके लिये जो नहीं चाहता था कि एक वृद्धके हाथों सौंपकर उसकी नई उमंगों, नये अरमानोंका खून किया

जाय—अब, इस समय वही उसके प्रति घोर अन्याय करने पर उतारू हो गया। स्वार्थ और भावी सुखोंकी कल्पनाने उसके ज्ञान चक्षुओं पर अन्धकारका परदा चढ़ा दिया और अब वह मैनेजर साहबको बड़ी श्रद्धा एवम् भक्तिकी दृष्टिसे देख रहा था। सच तो है, स्वार्थी-संसारमें सदा विजय होती है असत्य और अन्याय की ही।

मैनेजर साहबने कुछ क्षण उपरान्त पूछा—"तो तुमने अपना निर्णय सुना दिया रामूबाबू! अब मैं विश्वास रक्खूं, अपने बचनोंसे फिरोगे तो नहीं—खूब सोच समझ लो, पीछे विश्वासघात न करना।"

"कभी नहीं साहब!" रामूबाबूने निर्भीक होकर उत्तर दिया—"जबानसे निकली हुई बात और कमानसे निकला हुआ तीर भी कभी वापस आता है! मैं आज घर जाकर उन लोगोंको भी राजी कर लेता हूँ, फिर कोई शुभ मुहूर्त देखकर शादीकी तारीख नियत हो जायगी।"

"जेलानी फैक्टरीकी चिट्ठी भेजकर आज तुम फौरन ही घर चले जाओ और उन लोगोंको राजी करके आज ही इसकी सूचना मुझे दे दो क्योंकि जमींदार शीघ्र ही इस शुभ कामको कर लेना चाहते हैं।"

"बहुत अच्छा"—कह कर रामूबाबू क्लर्कोंके कमरेकी तरफ चल दिये और जल्दी २ अपना काम खतम करके घर जानेकी तैयारी करने लगे।

चौथा परिच्छेद

रातके कोई साढ़े आठका समय होगा। कृष्ण-पक्षकी अंधियारी चारों ओर अपनी भयानक आभाओं द्वारा एक आतंक-सा जमाये हुए थी। आकाशमें झिलमिलाते हुए तारोंकी क्षीण ज्योति ही इस समय पथिकोंको उनका मार्ग दिखानेमें सहायता कर रही थी! शरद्-ऋतु यद्यपि वायुमें अभी पूर्ण रूपसे गर्मीका प्रवेश नहीं हो पाया था, इसीसे उसके एक झोंकेमें ही शरीर रोमांचित हो उठता था। एक तो यों ही सब ओर महा-अन्धकारका साम्राज्य था तिस पर गांवकी निर्जनताने तो और भी वहांकी भयानकताको चार चांद लगानेमें सोने पर सुहागेका काम किया था।

ठीक ऐसे ही समय कंचन-सदनके पिछली तरफवाले दरवाजेमें से कोई निकला और आमके पेड़ोंकी छायामें अपने आपको छिपाता हुआ जल्दी-जल्दी पगडंडीकी ओर चलने लगा। पथिककी चालसे वह कोई स्त्री-सी प्रतीत होती थी; दरवाजेसे निकलते ही जब उसने एक बार अपनी दृष्टि चारों ओर घुमाई तो वह डरी हुई थी। उसके वहांसे चलते ही दूर गांवसे बाहर खेतोंमें स्यारोंकी बोली सुनाई पड़ी, थोड़ा आगे बढ़ने पर ज्यों ही वह एक वृक्षके नीचेसे निकलने लगी त्यों ही उसके ऊपर बैठे हुए उल्लूका कर्कश-स्वर उसे सुन पड़ा। एक तो यह अन्धकार-पूर्ण निर्जनता उसे योंही अखर रही थी तिस पर इस बेतुकी बोलियोंने तो उसे एकदम ही भयभीत कर दिया, किन्तु फिर भी वह

साहस करके आगे बढ़ी ही चली गई। जब अधिक भय लगता तो वह बड़ी सावधानीके साथ भागना शुरू कर देती और जब थक जाती तो पुनः उसी चालसे चलना आरम्भ कर देती, परन्तु उस समय उसकी वह साधारण चाल भी भागनेसे कम नहीं थी।

न जाने उस बेचारी पर क्या कष्ट ऐसा आके पड़ गया था कि जिससे बाध्य होकर उसे ऐसे भयानक समयमें घरसे बाहर निकलना पड़ा। इस संसारमें कौन कब क्या कर बैठेगा इसका अनुमान लगाना भी एकान्त-रूपसे कठिन है—कुछ भी हो परमात्माकी माया ही निराली है! पगडंडी, जिस पर वह चल रही थी बहुत सकरी थी। उसके दोनों ओर बड़ी-बड़ी घास फूंसकी झाड़ियां खड़ी थीं, जिनके सिरे मुड़-मुड़के पगडंडीका चिन्ह तक मिटा देनेकी कोशिश कर रहे थे। ऐसे ही दुर्गम पथसे वह अनुमानके आधार पर झपटी चली जा रही थी। लम्बी घास उसके वस्त्रोंसे स्पर्श होकर सरसरकी आवाज पैदा कर रही थी। बढ़ी जा रही थी इसी प्रकार वह अपनी धुनमें—जैसे भी हो मार्ग शीघ्र खतम करनेकी उसे उत्कट अभिलाषा थी चलते २ पासकी झाड़ीकी जड़ में उसे दो बड़ी आंखें चमकती हुई दिखाई दीं और जैसे ही वह उधरसे होकर आगे बढ़ी कि हठात कोई जानवर उसके सामनेसे होकर आगे निकल गया। बेचारी पहले ही भयके कारण हताश हो रही थी अब रहा सहा साहस भी उसका जाता रहा—करती भी क्या? चलते ही रहना उसके लिये तो अनिवार्य था। अपने निर्धारित स्थान पर तो किसी तरह उसे पहुँचना ही था, इसीसे वह बढ़ी जा रही थी उसी ओर बिना किसी रुकावटके।

सामने कुछ दूरी पर एक झोपड़ेके भीतर दीपकका क्षीण प्रकाश दिखाई दे रहा था। उसे देखते ही उसने एक संतोषकी निश्वास छोड़ा और अब उसकी चाल भी पहलेसे कुछ कम हो गई—सम्भवतः उसे वहीं तक पहुँचना था। आगे पानीसे भरी हुई एक नहर बह रही थी, उसीके बीचमें खड़े होकर उसने हाथ मुंह और पैर धोये और जल्दी अपनी धोतीमें चिपटे हुए बनैली घास फूंस छुटा कर पुनः झोपड़ेकी तरफ चलने लगी, किन्तु उसी क्षण पीछेसे किसीकी आवाज आई—

"क्यों चन्द्रा, आज तो तुम बड़ी घबराई हुई सी घरको जा रही हो! आखिर बात क्या है?" यह आवाज उसकी परिचित थी और थी ऐसे मनुष्यकी जिसका इस समय वहां होना किसी प्रकार भी संभव नहीं था। यह बोली सुनते ही वह एक दमसे सिहर उठी और बड़ी कठिनाईसे अपना बिखरा हुआ साहस बटोर कर उसने उत्तर दिया—

"कुछ नहीं छेदीलाल, मैं केवल इस अंधियारीको ही देख कर कुछ घबड़ा सी गई थी और कोई बात नहीं।"

"परन्तु आज इतनी देर तक तुम जमींदारके पास कैसे रुकी रहीं?" उसने मुंह बिगाड़ कर पूछा।

जमींदारके पास मैं क्या करती, मुझे तो उनकी लड़कीने अभी तक जबर्दस्ती अपने पास बैठाए रक्खा था। बहुत कहने सुनने पर भी जब उसने मुझे नहीं आने दिया तब मजबूर होकर उसके पास बैठना पड़ा।"

"हूँ—तो अब तुम मुझे बनाने लगी हो।" छेदीलालने विचित्र भावसे उत्तर दिया।

वह बोली—"अरे तो इसमें बनानेकी भला कौन-सी बात है ! आखिर पुष्पाके पास बैठनेमें क्या हर्ज है ?"

छेदीलाल—"तुम्हारी यह ढोंगबाजी किसी दूसरे पर ही रंग जमा सकती है चन्द्रा, मुझ पर नहीं ! मैं भली प्रकार जानता हूँ कि पुष्पा अधिक बोलना किसीसे भी पसंद नहीं करती—उसने तुम्हें इतनी देर तक ठहराये रक्खा, आश्चर्य है !"

उसने कहा—"आश्चर्यकी इसमें क्या बात है। न सही मैं पुष्पा के पास—समझ लो जमींदारके पास ही थी।"

छेदीलाल—"हां, ऐसा क्यों नहीं कहती हो ? उनके पास इतने समय तक रहना भी कोई खास प्रयोजन रखता है।"

चन्द्राने लापर्वाहीसे कहा—"प्रयोजनकी भी एक ही कही—भई प्रयोजन ही क्या था ? मान लो दूधका हिसाब करते-करते इतनी देर हो गई। दिलका समझना ही क्या, जैसे चाहा मोड़ तोड़के समझा लिया।"

छेदीलालने खीजके उत्तर दिया—"क्या बातें करती हो चन्द्रा, बिना मेरे कभी उन्होंने हिसाब किया भी है जो आज ही करेंगे ? यह सब तुम्हारी चालबाजी है।"

वह बोली—"क्या खूब ! आप समझते हैं कि वह हर काममें आप की ही सलाह लिया करते हैं, आप मुन्शी होंगे तो उनके बाहरके कामोंके या कि घरके भीतरके लिये भी !"

छेदीलाल—"चन्द्रा, तुम मुझे आंखों देखते धोखा देनेकी कोशिश कर रही हो, इसका परिणाम अच्छा न होगा। तुम्हीं बताओ, प्रेमके पथमें यह विषधर कांटा मेरे जीवनमें ईर्षा और द्वेषका नया अंकुर पैदा

करनेके लिये काफी नहीं तो और क्या है? मेरे माथेमें भी कुछ बुद्धि है, मैं कुछ सोचने समझनेकी शक्ति रखता हूँ। यदि मेरे नेत्र धोखा नहीं देते तो क्या मैं यह नहीं कह सकता कि आज कई रोजसे तुम उनसे घनिष्ठता बढ़ानेकी कोशिश कर रही हो। नित्य प्रति जब सायंकाल दूध लेकर तुम उनके यहां जाती हो तो अवश्य देरी करके लौटती हो, यह मैं भली भांति जानता हूँ, आखिर इसका कोई तो कारण होना चाहिये?"

चन्द्रा—"जब कोई कारण होतो बताऊं भी, ईर्षाने बुद्धि पर पर्दा डालकर तुम्हें तो एकदमसे अन्धा कर दिया है। अपना आगा पीछा कुछ भी न सोचकर तुम जो चाहते हो बक देते हो। यह उतावलापन तो तुम्हारा गजब ढा देगा—इससे प्रेरित होकर तुम मुझ पर झूठा दोषारोपण करनेसे भी नहीं चूकते। मेरी तुम्हारे ऊपर कितनी श्रद्धा है, कितना प्रेम है, इसे तुम क्या समझो? पुरुष स्वभावसे ही स्त्रियोंकी अपेक्षा कहीं अधिक जल्दबाज होते हैं, स्त्रियोंके प्रति अविश्वास और भ्रमपूर्ण विचारोंसे भरा हुआ उनका उद्भ्रान्त हृदय तनिक भी यह जाननेकी चेष्टा नहीं करता कि स्त्रियां केवल उनके प्रेमकी भूखी रहती हैं, उनके ऊपर अपना सर्वस्व न्योछावर कर देनेमें ही अपना परम गौरव समझती हैं। ओफ, कितना अन्याय करते हैं ये लोग हमारे साथ यह बात केवल हमारे पके हुए हृदय ही जानते हैं।"

चन्द्राके इस लम्बे चौड़े वक्तव्यसे प्रभावित होकर मुन्शी छेदीलालने कुछ नम्रतासे पूछा—"अच्छा चन्द्रा, आज तुम स्पष्ट रूपसे मुझे बता दो कि जमींदारने उस रोज तुम्हारे पिता और भाईको बुलाकर क्या क्या

कहा था ? देखो, सत्यको छिपानेकी कोशिश न करना नहीं तो तुम्हें इसका बहुत बड़ा पाप लगेगा। मुझे सच-सच सब बातें बता देनेमें तुम्हें कोई भी आपत्ति नहीं होनी चाहिये।"

चन्द्रा—"तुम तो योंही भ्रमके जालमें फंसे हुए हो, कोई बात हुई हो तो बताऊं भी।"

छेदीलाल—"अच्छा न बताओ तुम्हारी मर्जी। मैं खूब समझा हूँ, मेरा समझना गलत नहीं हो सकता—जमींदार साहबका जादू काम कर गया, उनके प्रलोभनोंने तुम्हारी तथा तुम्हारे बाप और भाईकी आंखों पर एक जबर्दस्त पर्दा डाल दिया है जो अब किसी तरह भी उतारा नहीं जा सकता। अपने भावी सुखोंकी कल्पनामें तुम इतनी डूब चुकी हो कि सच्चे प्रेम और वासनासे भरे हुए एक कामान्ध बृद्धके झूठे एवम् बनावटी प्रेममें क्या अन्तर है, इसका अन्दाजा लगाना तुम्हारे लिये एकान्त रूपसे कठिन ही नहीं, अपितु असम्भव-प्राय हो गया है, किन्तु याद रक्खो परिणाम इसका........."

"वही होगा, जिसे मैं बहुत दिनोंसे सोचे बैठा था"—नहर उस पार से आने वाली किसी अज्ञात आवाजने छेदीलालकी बातको बीचहीमें वाधा देकर रोक दिया। वह और चन्द्रा दोनों ही इस तीसरी आवाज पर चौंक पड़े। चोरीसे मिलने वालोंकी और गति ही क्या होनी चाहिये ?

किसी अज्ञात आशंकाने दोनोंके हृदयोंको एकबारगी मसोसके रख दिया।

पुरुषकी अपेक्षा स्त्रियां कहीं अधिक चपल, चतुर और बुद्धिमती

होती हैं। चन्द्राने बड़ी शीघ्रतासे चलते हुए कहा—"अच्छा छेदीलाल अब तुम जाओ। लोगोंकी दृष्टिसे अभी हमें बचते ही रहना चाहिये। यदि कल मुझे अवकाश मिला तो तुमसे अवश्य मिलनेकी कोशिश करूंगी; हृदयकी अधीरताको दबानेमें भी एक प्रकारका आनन्द प्राप्त होता है। मर्द होकर भी तुम साहस पूवक इस विचित्र आनन्दको प्राप्त नहीं कर सकते? बड़े खेदकी बात है।"

चन्द्रा मुड़कर वहांसे चलने लगी। परन्तु छेदीलालने उसका हाथ थाम कर कहा—"नहीं चन्द्रा, कुछ भी हो आज मैं तुमसे बिना पूरा जवाब लिये नहीं जाऊंगा। तुम नहीं जान सकती—यह जिन्दगी और मौतका सवाल है। तुम्हारे सही-सही प्रत्युत्तर पर ही मेरे जीवन-मरण की समस्या निर्भर होती है। इसका फैसला मैं आज ही करवा लेना चाहता हूँ।"

"ओफ, निरे पागल हो गये हो मुन्शीजी!" चन्द्राने खीजकर कहा—"यह जानते हुए भी कि किसी तीसरे मनुष्यकी दृष्टि हमारे ऊपर जमी हुई है, तुम मुझे रोकनेकी कोशिश कर रहे हो। अपने साथ ही तुम मुझे भी गांववालोंकी नजरोंमें गिराना चाहते हो? यह ठीक न होगा—बदनामीके कलंकित धब्बोंसे बचनेकी जरूर कोशिश करनी चाहिये। अब तुम फौरन ही यहांसे चले जाओ, कल यदि अवकाश मिला तो जरूर मिलूंगी"—इतना कहके वह पुनः मुड़कर चलनेके लिये उद्यत हुई पर छेदीलाल उसे कब जाने देता? उसे तो आज अपने भाग्य-फल की परीक्षाका परिणाम देखना था। अस्तु—

"तुम्हें हमारी कसम है चन्द्रा, जो बिना मेरी बातका जवाब दिये

हुए यहांसे जाओ !" अपना भावी-जीवन जिसके साथ बितानेका एक बार उसने अपने दिलमें निश्चय कर लिया था, उसके कसमके बंधनका उलंघन वह कैसे कर सकती थी ! इच्छा न होते हुए भी उसे रुकना पड़ा।

चन्द्राने छेदीलालका हाथ झकझोरते हुए कहा—"अब क्या कसर रह गई है ?"

छेदीलालने वैसे ही खड़े हुए कहा—"चन्द्रा, तुम और जमींदार दोनों ही मेरे साथ अन्याय कर रहे हो—दोनों ही क्यों तुम्हारे बाप और भाई, वे भी तो मेरे विरुद्ध दुःख एवम् आत्म-वेदनाका पहाड़ खड़ा करनेकी कोशिश कर रहे हैं। धन और सम्पत्तिके प्रलोभनोंसे सबके ज्ञान-चक्षुओं पर स्वार्थसे भरे हुए छल-कपट एवम् मदांधताकी काली चादरका आवरण-सा चढ़ गया है। परन्तु याद रक्खो चन्द्रा, तुम्हें इस पापका फल अवश्य भोगना होगा—परमात्मा इसका दण्ड देंगे, अवश्य देंगे।"

चन्द्रा—"अब मुझे विश्वास हो गया कि तुम यथार्थमें पागल हो गये हो। पागलोंसे ज्यादा बात करना ठीक नहीं होता—छोड़ो मेरा रास्ता, मैं अब एक मिनट भी यहां रुकना नहीं चाहती।"

"ओफ ! क्या मैं सचमुच ही पागल हो गया हूँ—छेदीलालने माथा ठोक के कहा—"उड़ा ले चन्द्रा, जितना जी चाहे तू मेरा मजाक उड़ा ले ; मगर याद रख एक दिन आयेगा जब तुझे अपनी गलतीका पता चलेगा। अब मैं पागल हूँ, फिर असह्य-दुःखकी यंत्रणासे तुझे पागल बनना होगा।

चन्द्राने लापरवाहीसे कहा—"उंह, इसकी चिन्ता मैं अभीसे करना भी नहीं चाहती। मैं चाहती हूँ केवल अपनी तथा अपने बाप भाईकी दरिद्रताको दूर करना। मैं स्पष्ट-रूपसे तुम्हें बता देना चाहती हूँ कि अपना वर्तमान दुख टालनेके लिये जो भी सम्भव होकर गुजरे—उसे अवश्य करूंगी। तुम्हीं बताओ छेदीलाल···" उसी प्रवाहमें चन्द्रा कहती चली गई—

"तुम्हीं बताओ, अठारह रुपये महीनेके तुम नौकर हो। सारा घरका खर्च तुम्हारे सिर पर है, तिस पर छोटी बहनका विवाह भी तुम्हें ही करना होगा। अब तुम्हीं सोचो, इन सब बखेड़ोंसे तुम कैसे उबर सकोगे? भगवान ही जानें तुम्हारे विवाहकी बारी भी आये!"

उसके इस परिहासने छेदीलालको और भी उन्मत्त कर दिया; उसने कुछ गरम होके कहा—"इन बातोंको छोड़ दो चन्द्रा! मैं निरा कङ्गाल ही नहीं हूँ, चाहूँ तो अपना विवाह कल कर लूं।"

चन्द्राने व्यंगके साथ उत्तर दिया—"विवाह करना कोई सरल बात ही तो है। एक-एक विवाहमें ढेरों रुपये लग जाते हैं, जो करता है वही जानता है—तुम क्या जानो?"

उसकी एक-एक बात मुन्शी छेदीलालके हृदयको छील रही थी। यदि गांवका और कोई इस समय चन्द्राकी जगह होता तो एक ही पैंतरेमें वह अवश्य उससे बदला ले लेता, परन्तु करता क्या मजबूर था। अपनी समस्त इच्छाओंके विरुद्ध चन्द्राको देखते हुए भी उसे किसी कारणवश उसके आगे नतमस्तक होना ही पड़ा और उसका हाथ पकड़ कर बड़ी नम्रतासे कहने लगा—

"चन्द्रा, मैंने तुम्हारे कहे अनुसार ही तुम्हारे साथ विवाह करनेके लिये बड़े परिश्रमसे कुछ रुपया जमा कर लिया है, जो हमारे एक विवाहके लिये बहुत काफी है–'देखो, मेरी बातकी अवहेलना न करो।"

"किन्तु श्रीमानजी, उन रुपयोंसे तुम पहले अपना विवाह करोगे या अपनी उस पठिया बहनका जो घरमें बैठी हुई न जाने किस-किस पर बिजली गिरा रही होगी। भली चाहो तो जल्दी ही कहीं उसका प्रबन्ध करो नहीं तो किसीके साथ निकल भागी तो नाक कट जायेगी नाक!"

चन्द्राकी जली कटी बातोंसे छेदीलाल एकबारगी ही क्रोधोन्मत्त हो उठा। आखिर पुरुष था, कब तक उसकी भर्त्सनापूर्ण विजयमें पराजित होता रहता? बिगड़ कर बोला—"तुम बहुत आगे बढ़ी जारही हो चन्द्रा! जानता हूँ जमींदारने तुम्हारा दिमाग बिगाड़ दिया है इसीसे तुम जैसे छोटे आदमीसे बात करना पसन्द नहीं करतीं। मगर मैं..."

चन्द्राने उसके रुद्ध कण्ठसे अन्दाजा लगा लिया कि इस समय क्षोभ, प्रेम, ईर्षा तथा हृदयकी अन्तर्वेदनाने मिलकर छेदीलालकी दशा बड़ी विचित्र कर दी है। उसे वास्तवमें उसकी उस अवस्था पर बड़ी दया आई; हृदयमें एक प्रकारकी समवेदनाका भाव लेकर वह बोली—

"छेदीलाल, तुम्हें इतना अधीर नहीं होना चाहिये। तुम मर्द हो, अपने दिलमें मर्द होनेका तुम दावा भी करते हो फिर क्यों जरा-जरासी बातमें इतना हतबुद्धि हो जाते हो? तुम समझते होगे, मैं तुम्हारे प्रेमका अनादर कर रही हूँ—यह बात नहीं है। विश्वास रक्खो इस हृदय पर पहले तुम्हारे ही प्रेमकी छाप पड़ी है अतएव अन्तिम श्वास तक भी इसका मिट जाना सम्भव नहीं। हो सकता है मैं अपने बृद्ध पिताका

वर्तमान दुःख टालनेके लिये इस जीवनमें यह शरीर दूसरेको अर्पण कर दूं, किन्तु हृदयके कण-कण पर आच्छादित तुम्हारा वास्तविक प्रेम आयु-पर्य्यन्त भूला नहीं जा सकेगा।"

"यह सब कहनेकी बातें होती हैं"—छेदीलालने विरक्त होकर कहा; "दूसरेके वशमें चली जाने पर फिर कौन किसको याद करता है। अच्छा चन्द्रा, जाओ तुम्हें जैसा अच्छा लगे वैसा ही करो। आज तक भूलसे जो अपराध मुझसे हुए हों उन्हें माफ करना"—कहते-कहते वह चुप हो गया।

वह बोली—तुम्हारे अन्दर सारी बातें स्त्रीपनकी झलकती हैं।"

उसने कहा—"तुम्हारा समझना गलत नहीं है चन्द्रा, मैं स्वयं हैरान हूँ मेरा हृदय इस मामलेमें इतना नरम क्यों है?" कुछ क्षण ठहर कर वह पुनः बोला—"मैं नहीं समझता था कि तुम इतनी स्वार्थी, लोभी और विश्वास-घातिनी हो नहीं तो......"

"अच्छा रहने दीजिए बस ज्यादा बातोंको, अब समय नहीं रहा इस लिये माफ कीजिए मैं जा रही हूँ। कल यदि हो सका तो अवश्य मिलनेकी कोशिश करूंगी"—इतना कहा और तुरन्त चल पड़ी। इस बार छेदीलालने उसे नहीं रोका प्रत्युत एक निःश्वास छोड़ते हुए बोला;

"अब कल भी मिलनेके लिये कष्ट उठानेकी जरूरत नहीं पड़ेगी..."

"ओफ! प्रेम-पुजारीको भी कैसी-कैसी मुसीबतें उठानी पड़ती हैं" इस आवाजके साथ ही किसीने उसके कंधोंको स्पर्श किया और बोला—"क्यों मुन्शीजी, काली रातकी अंधियारी चोरीसे मिलनेवालोंके लिये बड़ी सुन्दर होती है न?" आवाज पहचानते ही मुन्शीजीको मानों

काठ मार गया परन्तु बहुत शीघ्र ही संभल गये और साहस करके बोले—

क्योंजी कुमार! इतनी रात गए पर भी तुम अभी गांव भरका चक्कर लगाते फिर रहे हो, आखिर मामला क्या है? कहीं कुछ दालमें काला तो नहीं है?" कुमारने हंसते हुए कहा—"हां हां काला न होता तो इतनी जोरसे प्रेम-पथमें ठोकर खा सकते थे कहीं?" उसके इस व्यंगने छेदीलालके आहत हृदय पर और भी कुठाराघात किया। दिल पहलेसे ही रोनेको कर रहा था, अब इस व्यंगने उसका बांध तोड़ दिया और वह सिसक-सिसक कर रोने लगा। कुमारको उसकी दशापर बड़ी दया आई। उसने उसे समझाते हुए कहा—"पागल हो गये हो छेदीलाल! मनुष्यके जीवनमें कई उलझनें पड़ती हैं, कितनी ही समस्याओंको हल करना पड़ता है किन्तु हताश होनेसे कुछ भी नहीं हो सकता। हृदयको स्थिर करके बड़े धैर्यके साथ समयकी प्रतीक्षा करनी चाहिये। आओ चलें, अब रात अधिक हो गई है।" छेदीलाल चुपचाप कुमारके पीछे-पीछे चल दिया।

पांचवां परिच्छेद

जन साधारणमें एक कहावत चरितार्थ है 'मथुरा तीन लोकसे न्यारी'। वास्तवमें यह बात निर्मूल नहीं है; वहांकी छटा ही कुछ ऐसी अद्भुत, रंग-मयी एवम् चित्ताकृषक है, जो भुलानेकी कोशिश करने पर भी नहीं भूली जा सकती। ऐतिहासिक दृष्टिसे देखिए अथवा मनोरंजनकी दृष्टिसे—मिलेगा वहां आपको हर प्रकारका रस! बड़ी-बड़ी धर्मशालाएं, ऊंचे ऊंचे मन्दिर और मनोहर दृश्य सम्मुख करने वाले यमुना मैय्याके तट पर बने हुए सुन्दर घाट अब भी धर्मपरायण हिन्दू दानवीरोंके उदार होनेका प्रमाण दे रहे हैं।

अबसे कोई बीस बाइस वर्षकी बात है, मथुराकी गलियोंमें एक भिखारिन पाई-पाई के लिये लोगोंके आगे हाथ पसारती फिरा करती थी। लोगोंकी धारणा थी कि वह किसी उच्च घरकी लड़की थी, क्योंकि जिस समय मथुरा वासियोंकी पहले पहल उसके ऊपर दृष्टि गई थी, उस समय वह बहुत सुन्दरी, सुशील और नव-यौवना थी। वह शरीर पर बहु-मूल्य गुलाबी रंगकी रेशमी साड़ी और कान व गलेमें सोनेके आभूषण पहने हुए थी। फिर कुछ दिन बीतने पर जब उसे खर्चकी जरूरत पड़ी तो उसने एक-एक करके अपने पासकी सब मूल्यवान चीजें बेंचकर अपनी कमीको पूरा किया था। शायद उसे अपना प्रिय आभूषण बेंचनेकी कदापि जरूरत न पड़ती, यदि उस समय वह गर्भवती न होती।

लोगोंको उसका पूर्ण परिचय प्राप्त करनेकी बड़ी उत्कण्ठा रहती और वे उसके बारेमें कुछ जाननेकी भरसक चेष्टा भी करते, परन्तु इस बारेमें उससे बात करनेवालोंको सदा निराश ही होना पड़ता था। वह अधिक किसीसे बोलती न थी, विशेषतया चुप रहनेका ही उसका स्वभाव था, प्रत्युत जो कोई उसका परिचय जाननेके लिये उसे अधिक वाध्य करता तो वह एक विचित्र ढंगसे इस बुरी तरहसे उसकी तरफ घूरती कि फिर उसे कुछ पूछनेका साहस नहीं होता था। उसके विरुद्ध जन-साधारणमें नित्य नये-नये विचार उठते, कोई कहता—लड़की तो किसी अच्छे घरकी है पर न जाने क्यों भाग आई। मालूम पड़ता है, कोई-कोई कह उठता—अरे परमात्माके भेद वही जाने, कौन जाने यह वेश्या ही हो!

दुनिया बड़ी रंगीली है। लोगोंका मुंह नहीं पकड़ा जाता, जो जिसके मनमें आता कह डालता, परन्तु वह बेचारी चुप रहती। चुप रहने हीमें उसने अपना कल्याण समझा और इसीलिये वह सदा चुप ही रहती। लोगोंकी किम्बदन्तीके अनुसार वह वाराङ्गना ही सही! उसके रूप लावण्यको देखकर यदि सौन्दर्यके उपासक कुछ मनचले युवक, उसे हस्तगत करनेमें सफल न हो सकने पर इधर-उधर उसकी बुराई अथवा बदनामी करते फिरें तो इसमें उस बेचारीका क्या दोष? काम लोलुप, निर्दयी-चाण्डाल, यदि अपनी इच्छामें सफल न होनेपर अन्याय पूर्वक उसे लांछित करनेपर उतारू हो जायँ तो इसमें उस निरपराधनीका चारा ही क्या? यह तो चक्र ही दुनियाका ऐसा है।

हां, तो कुछ भी हो—ठीक समयपर उसके गर्भसे एक बालकका

जन्म हुआ और वह बड़ी-बड़ी कठिनाइयोंसे दुनियाकी उलझनोंको सुलझाती हुई, जीवनकी समस्याओंका निर्भीकता पूर्वक सामना करती हुई अपना तथा अपने उस नवजात शिशुका पालन-पोषण करने लगी। नित्य प्रातःकाल उठती और बच्चेको बगलमें लेकर गली कूचे और बाजारोंमें घर-घर भीख मांगना शुरू कर देती, जो कुछ मिलता उससे अपनी और बच्चेकी क्षुधा मिटाती और रात आनेपर किसी मन्दिर अथवा यमुना किनारे घाटके किसी चबूतरेपर पड़ रहती। फिर सबेरा होता और वह अपना काम शुरू कर देती—यही थी उसकी दिनचर्या और यही था उसका नित्यका नियम।

दिनके बाद महीने और महीनेके बाद वर्ष! बस इसी प्रकार उस भिखारिनके दुखदायी समयकी घड़ियां पूरी होने लगीं और वह बालक भी समयानुकूल दिनपर दिन बढ़ने लगा। दिन बीतते कुछ देर नहीं लगती, जैसे-तैसे करके उसने अपने बच्चेको पाल पोषकर आठ वर्ष का कर दिया और अब वह भी कुछ न कुछ करके अपनी मांके कामोंमें उसे सहायता देने लगा। ज्यों २ बालक बड़ा होने लगा त्यों २ उस भिखारिनकी चिन्ता कम होने लगी और उसके मनमें एक नई आशाका संचार होने लगा। आशाका संचार होना तो स्वाभाविक ही था, किसी भी असहाया माताके मनमें अपने पुत्रसे भविष्यके लिये आशा करना कौन आश्चर्यकी बात है?

उसने सोचा था कि बड़ा होकर पुत्र कमायेगा और वह आनन्दसे बैठकर खायेगी, फिर उसे कोई चिन्ता नहीं रहेगी। किन्तु मनका सोचा कभी किसीका पूरा होता है जो उसीका होता? मनुष्य सोचता कुछ है

और होता कुछ है। यही इस दुनियाका नियम है। सोलहवें वर्षमें पदार्पण करते ही एक दुर्घटना ऐसी हुई कि जिसने भिखारिनकी समस्त आशाओंपर एक दम पानी फेर दिया। उसने स्वप्नमें भी नहीं सोचा था कि बड़ा होनेपर उसका एकमात्र पुत्र अकस्मात् ही उसे इस प्रकार धोखा दे बैठेगा; जिस बातकी उसने कभी कल्पना भी नहीं की थी अब वही उसे प्रत्यक्ष रूपसे देखना पड़ रहा था। आखिर यह दुनियाके रंगीली होनेका प्रमाण नहीं तो और क्या था?

बात यह हुई कि एक दिन हरपालने अपनी भिखारिन मातासे कहा कि—"अम्मा गोपालधन चौबेकी बाड़ीके वह तीनों लड़के जो मेरे साथ कभी २ यहां भी आजाते हैं, कहते थे कि स्टेशन पर कुलीगिरी करनेसे खूब पैसे मिलते हैं तू भी हमारे साथ चला कर। क्यों मां मैं भी उनके साथ चला जाया करूं? खूब पैसे लाया करूंगा!"

भिखारिनने अपने बेटेके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—"बेटा! कुलीगिरी सबसे अच्छी मजूरी है परन्तु, यदि वह ईमानदारीसे की जाय। कैसा अच्छा धन्धा है,—मुसाफिरका सामान उठाया और उसे निर्धारित स्थान पर पहुँचा कर हाथ के हाथ पैसे ले लिये!

"तो कलसे मैं जरुर जाया करूंगा उनके साथ मां!" हरपालने मांकी गोदमें सिर देते हुए कहा। भिखारिनने वात्सल्य प्रेमसे उसे हृदय से लगा लिया और बोली।

"चल तुझे भूख लग रही होगी? मक्काकी रोटी और मठा रक्खा है, मींजके खाले।"

हरपालने कहा—"मां मुझे तो भूख नहीं है तू खाले।"

उसकी मांने तुरन्त पूछा—"क्या खाया है रे तूने जो भूख नहीं लगी?"

हरपाल—"सांझ ही तो हम तीन चार लड़के द्वारकाधीशके मन्दिर में गये थे। मां बड़ा आनन्द आरहा था, वहां तो! बड़ी भीड़ इकट्ठी थी, सब आरती गा रहे थे। कोई मारवाड़ी सेठ आया था उसीने आज चौबे महाराजोंको प्रीतिभोज दिया था। खाते वक्त बड़ा तमाशा हुआ मां! धर्मानन्द चौबेने सात सेर लड्डू, तीन सेर खीर और तीन पाव मालपूवे खाये थे। नर्बदाशंकरने तो उन्हें भी मात कर दिया। हमने भी खूब पेट भर-भरके उड़ाया।

भिखारिन बोली—"अकेला ही खा आया अपनी मांके लिये कुछ भी नहीं?"

"लाया हूँ मां, वहीं घड़ेके ऊपर तो रक्खा है, मैं लाता हूँ"—झट मांकी गोदसे निकल कर हरपाल घड़ेके ऊपरसे एक छोटीसी गठरी उठा लाया। उसकी मांने खोलके देखा, कोई आधा सेरके करीब कचौड़ी तीन पावके लड्डू और रायतेसे भरा हुआ मिट्टीका डोल्ला! भिखारिन ने बड़े शौकसे जितना चाहा खाया और बाकी सुबहके कलेऊके लिये रख दिया। भोजनकी खुशीमें वह यह भी पूछना भूल गई कि मांगने वालोंको आखिर इतना देता कौन है? आधा सेर कचौड़ी, तीन पाव लड्डू और डेढ़ पाव या आधा सेरके करीब रायता!

क्या मालूम था उस बेचारीको कि सिर पर नकाव न होनेके कारण वह बिगड़ता जा रहा है। नन्दा और पीरू जैसे चोर लड़कोंके साथ रह कर वह चोरी करना नहीं सीखेगा तो क्या मोटर चलाना सीखेगा?

दोनों आते और चुपकेसे हरपालको बुलाकर ले जाते। बाजार जिसमें बिसातीकी दुकान पर अधिक भीड़ देखते खड़े हो जाते और मौका पाकर अच्छा खिलौना, बाजा या ताला उठा लेते और बड़े कौशलसे देखते भालते वहांसे नौ दो ग्यारह हो जाते। फिर कहीं अन्यत्र किसी धर्मशालाके यात्रीको वह चीजें औने पौने दामोंमें बेचनेकी कोशिश करते और इसमें वे सफल भी हो जाते। बहुत कम—कभी २ उन्हें चुराई हुई चीजें बेचते समय किसी उलझनका सामना पड़ता था नहीं तो प्रायः धन्धा रोज ही कामयाब रहता था। इस प्रकार नन्दा और पीरू दोनों सहचरोंके साथ हरपालने यह प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण की और यह तीनों अपने २ धन्धेमें एक दूसरेको नीचा दिखानेके ख्यालसे प्रायः अच्छा ही माल उड़ानेकी अधिक कोशिश करते। साधारण-तया घड़ी इत्यादि।

दूसरे दिनसे हरपालने कुलीगिरी करना शुरू कर दी। साथमें उसके वे दोनों; नन्दा और पीरू भी रेलवे स्टेशन पर मुसाफिरोंका सामान उठाने जाते और उन्हें किसी धर्मशाला अथवा बाजारके किसी कोनेमें पहुँचा कर इकन्नी दुअन्नी या तीन चार आने—जो कुछ भी मिलता संतोषी-जीवकी तरह ले लिया करते। उन्हें मजूरीके लिये किसी मुसाफिरके साथ लड़ते-झगड़ते कभी किसीने नहीं देखा। उनका मतलब ही दूसरा था—वे चाहते थे इस 'कुलीगिरी' की आड़में कोई लम्बा गफ्फा मारना। उन तीनोंके ख्यालसे 'कुलीगिरी' एक ऐसा धंधा था कि जिसका सूक्ष्म दृष्टिसे अध्ययन करने पर उन्हें इसकी गहराईमें एक लम्बा चौड़ा लाभ होनेकी संभावना हुई, किन्तु यदि भाग्य साथ दे!

रोज सुबह उठकर मनाते कि आज किसी मालदारकी मनीबैग अथवा एटेची हाथ लगे तो बड़ा अच्छा हो।

एक दिनकी बात है तीनों की तिकड़ी स्टेशन पर किसी अच्छे जेन्टिलमैन मुसाफिरकी ताकमें खड़ी थी। बड़ी देरसे कोई मज़ूरी नहीं हुई थी। रातको दो बज गये थे, आज दिन भरमें हरपालने साढ़े तीन आने, पीरूने पन्द्रह पैसे और नन्दाने सवा दो आने ही कमाये थे। देखते २ दो सवारी गाड़ियां आईं और स्टेशन पर खड़ी होकर चली गईं, किसी मुसाफिरने भी उन्हें अपना बोझा उठानेके लिये नहीं कहा। अन्तमें नन्दाने अपर क्लासके गेटकी रेलिंग परसे कूदते हुए कहा—"भाई अब मजूरी वजूरी तो कुछ मिलेगी नहीं, क्यों नाहक अपनी नींद भी खोवें?"

पीरूने कहा—"हां यार, अब यहां पर ठहरना फिजूल ही है—हम तो चलते हैं।"

नन्दाने हरपालसे पूछा—"क्यों हरिया, अभी तू नहीं चलेगा क्या?"

"न भइया, तुम लोग जाओ हम तो यह गाड़ी और देखेंगे" हरपालने मुंह लटकाए हुए ही उत्तर दिया। उसके इस बर्ताव से ही खीज कर पीरूने कहा—

"हां इस गाड़ी पर तो तुम्हें जरूर किसी मारवाड़ीकी नेवली हाथ आ जायेगी। चल यार नन्दा, मरने दे इसे यहीं पर। देखेंगे कितना कमाकर लाता है।" इसी प्रकार दांव पेंच खाते हुए वे दोनों हरपाल को अकेला छोड़कर चल दिए। वास्तवमें दोनों ही इस वक्त हरपालसे नाराज थे! उन्हें ईर्षा थी इस बातकी कि हमारा साथी होकर भी वह

इमसे ज्यादा कमानेकी कोशिश क्यों करता है ? तिकड़ी टूट गई, और अब अकेला हरपाल ही सेकेण्ड क्लासके गेटकी सीढ़ियों पर बैठा हुआ अपने भविष्यकी ओर ताकने लगा।

हरपाल बैठा था सीढ़ियों पर, परन्तु उसकी नजर मेन-गेट से बाहर सड़क पर थिरक रही थी। दस बज कर पचास मिनट पर एक्सप्रेस स्टेशन पर आकर ठहरी और उसके साथ ही गेटके बाहर एक टांगा आकर रुका। देखते ही हरपाल दो छलांगमें गेटके बाहर पहुँच गया। टांगेमें एक प्रौढ़ वयस्क सज्जन विराजमान थे ; और साथमें थी उनकी पुत्री रंभा। हरपालने उन महाशयके उतरनेसे पहले ही जाकर होल-डौल (विस्तर-बन्द) का हैंडिल पकड़ लिया और उसे उठाते हुए बोला—"बाबूजी गाड़ी पर चढ़ियेगा न ?"

"हां, बिस्तर-बन्द उठा ले और ले यह बक्स भी ले जाकर गाड़ीमें रख," उन महाशयने टांगेवालेको पैसे देते हुए कहा—"रंभा, तू भी चल कुलीके साथ मैं अभी आता हूँ।"

हरपालने बिस्तरा सिर पर रखा और चमड़ेका वह छोटा बक्स जिसमें शायद नकदी ही थी हाथमें उठाकर चल दिया। पीछे २ उसकी निगरानीके लिये रंभा चल दी। गेट पर पहुँच कर हरपालने रंभाकी तरफ मुड़ कर कहा—"टिकट है आपके पास ?"

"तुम उसकी चिन्ता न करो, हमें कोई टोकेगा नहीं।" रंभाने उत्तर दिया।

हरपालको फिर पूछनेकी जरूरत नहीं पड़ी, क्योंकि बिना किसी रुकावटके वे गेटसे पार हो चुके थे। सिर पर विस्तरेका बोझा होते

हुए भी वह हाथमें केवल उस चमड़ेके बक्सको थामे हुए ही सन्तुष्ट था, एक बार शरारतसे हिला कर उसने बक्समें रुपये होनेकी शंकाका समाधान भी कर लिया था। इस समय वह सोच रहा था—"काश, यह बक्स मैं हथिया सकता!" रुपयेकी लालसाके विचारोंने हृदयमें बवंडरका रूप धारण कर लिया, बक्स हस्तगत करनेकी बलवती इच्छाने प्रतिक्षण बढ़ती हुई उमंगोंको और भी द्विगुणित कर दिया। वह इस समय पूरी शक्ति लगा रहा था उसे पानेकी सरल विधि सोचनेमें। सेकेण्ड क्लासके डब्बेमें सामान रखनेसे पहले ही उसकी समझमें एक तरकीब आगई। अब उसके चेहरे पर प्रसन्नताके भाव दिखाई दे रहे थे।

यथा स्थान सामान रखवानेके बाद रंभाने अपना पर्स खोलते हुए पूछा—"क्या लोगे?"

हरपालने कहा—"दो आने।"

रंभाने उसके हाथमें दुअन्नी थमाते हुए पूछा—"तुम रहते कहां हो?"

"यहीं मथुरामें," उत्तर देते हुए हरपालने पूछा—"और आप?"

"हम लोग देहरादून रहते हैं," उसने उत्तर दिया—"वहां हमारा एक कारखाना है।"

"अब आप ब्रज-यात्रा करके वापस जा रहे हैं?" उसने पूछा।

"हां, हमलोग यहां एक महीनेसे आये हुए हैं और आज वापस जा रहे हैं।" रंभा इतना कहकर चुप हो गई क्योंकि सामनेसे उसके पिता हाथकी छड़ीको घुमाते हुए आरहे थे। आते ही उन्होंने रंभासे पूछा—"क्यों बेटी, सब सामान ठीकसे रखवाके इसे पैसे दे दिये हैं न?" उत्तरमें हां, सुनकर उन्होंने हरपालकी तरफ देखते हुए कहा—

"बस अब तुम जा सकते हो।" हरपाल यह सुनकर भी वहांसे खिसका नहीं बल्कि उसी डिब्बेके सामने खड़ा रहा। वह इस समय कुछ सोच रहा था, सम्भवतः उस मनीबेगकी बातको ही वह बड़े सूक्ष्म तरीकेसे सोच रहा होगा। बहुत शीघ्रही उसने कुछ निश्चय कर लिया और वहांसे हट कर वह एक बड़े वृक्षकी छायामें चला गया। वहां पहुँच कर उसने अपनी धोतीमें से एक चौड़ी पट्टी फाड़ी और उसे अपने सारे सिर और चेहरेके चारों तरफ ऐसे ढंगसे लपेटा कि केवल आंखें ही खुली रहीं और बाकी सब हिस्सा बिल्कुल ढक गया। कोई भी अब उसे देखकर यह नहीं कह सकता था कि यही हरपाल है; इसके बाद उसने कंधे पर डाली हुई मैली चादरको बदनके चारों ओर लपेट लिया और गाड़ीके चलनेकी प्रतीक्षा करने लगा।

थोड़ी देरमें गाड़ी के चलते ही हरपाल दौड़ कर सेकेण्ड-क्लासमें चढ़ गया और दरवाजा खोलकर अन्दर जाने लगा। डिब्बे भरमें पिता पुत्रीके सिवा और कोई नहीं था। हरपालको घुसता हुआ देखकर रंभा डर गई उसने घबराके कहा—"अरे यह कौन है? देखिये न पिताजी बड़ा अजीब आदमी मालूम पड़ता है।" उसके पिताने खड़े हुए हरपालको ऊपरसे नीचे तक देखते हुए कहा—"कौन है भाई?"

उसने स्वर बिगाड़ते हुए कहा—"गाड़ी छूट जानेके सबब यही डिब्बा हाथ आया है, अगले स्टेशन पर उतर जाऊंगा। माफी दीजियेगा बगैर पूछे अन्दर चला आया।" कहते हुए हरपाल सीटके नीचे फर्श पर बैठ गया लेकिन उसे किसीने पहचाना नहीं।

छठा परिच्छेद

एक्सप्रेस अपनी तेज चालसे भागा चला जा रहा था, छोटे-छोटे कई स्टेशन खट-खट पीछे छूटते जा रहे थे, बाहर स्वच्छ नीलाकाशके झिलमिलाते हुए तारोंकी मन्द ज्योतिमें वृक्षादि भूतोंकी छायाकी तरह नाचते दिखाई दे रहे थे। सेकेण्ड क्लास कम्पार्टमेंटमें केवल तीन मुसाफिर थे, जिसमेंसे दो अलग २ गद्दोंपर पड़े हुए थे और एक फर्शपर बैठा हुआ कुछ ऊंघ-सा रहा था। गद्दे परके मुसाफिर वे ही दोनों थे और नीचे बैठा हुआ था हरपाल, जिसे इस समय यदि पीरू और नन्दा भी देखते तो न पहचान सकते।

कई स्टेशनोंको छोड़नेके बाद अन्तमें गाड़ी एक बड़े स्टेशनपर रुकी। गाड़ी ठहरनेके दो मिनट बाद तक भी जब हरपाल नहीं उतरा तो उन महाशयने हाथके सहारे उठाते हुए कहा—"भाई गाड़ी रुक गई है उतरते क्यों नहीं?"

हरपालने कुछ नहीं कहा और चुपचाप खड़ा होकर एक बार उसने रंभाकी तरफ देखा—वह भी इसकी तरफ एक अजीब ढंगसे देख रही थी। यद्यपि हरपालका सारा शरीर कपड़ेसे ढका हुआ था, किन्तु नवयुवती रंभाकी आंखोंमें उसकी वह मदभरी आंखें नहीं छिप सकीं। भिखारिनका लड़का था तो क्या हुआ? था तो वह बीस वर्षका नवयुवक! तिसपर श्याम रङ्गका भरा हुआ चेहरा, बड़ी बड़ी आंखें और सुगठित शरीर—कोई भी नवयुवती देखती तो मैले वस्त्रोंमें होते हुए भी

सहसा उसकी ओरसे दृष्टि हटानेका साहस न सकती ; फिर रंभा भी तो सोलह वर्षकी सर्वगुण सम्पन्न नवयुवती ही थी, वह ही क्यों भला आंखोंमें आंखें डालकर इस अद्भुत आनन्दसे वंचित रहे। यह आयु और सौंदर्य रसका मनमोहक चस्का—भला कभी निर्धन-धनी, ऊंच-नीच और बड़े-छोटेका अन्तर भी जानने देता है ? इच्छानुकूल प्राणी-मात्रको इस रस-का आनन्द लेनेका अधिकार है।

हरपालकी दृष्टि रंभाके गौर-वर्ण चेहरेपर पड़ी और तुरन्त ही इसके बाद वह डिब्बेसे नीचे उतरकर एक तरफको चल दिया। पन्द्रह मिनट गाड़ी ठहरकर पुन; वहांसे चल दी। गाड़ी चलनेपर रंभाने अपने पिताकी तरफ कुछ बनावटी आश्चर्यसे देखते हुए कहा—"यह कौन था पिताजी ? बड़ा अजीब-सा आदमी मालूम देता था।"

वे बोले—"बेटी, रेलमें आजकल ऐसे बहुत से उचक्के सफर करते हैं जो आंख बचाते ही मुसाफिरोंका माल उड़ा लेते हैं। इनसे हमेशा होशियार रहना चाहिये; देखा नहीं कैसा स्वांग बनाये हुए था ?"

रंभाको यह बात कुछ अरुचिकर लगी वह बोली—"पिताजी, दुनियाको पहचानता बहुत कठिन है। कौन जाने वह बेचारा बिना टिकट सफर कर रहा हो और टिकट-चेकरकी दृष्टिसे बचनेके लिये हमारे डिब्बे में आ गया हो।"

"लेकिन यहीं अगर चेकर आ जाता तो क्या वह बच जाता ?"—अपनी बातको छोटी होती देख वह कुछ बिगड़ कर बोले।

उसने उत्तर दिया—"ऊंचे दर्जोंमें चेकर बहुत कम आते हैं, शायद इसी ख्यालसे वह आ गया होगा, या उसने सोचा होगा कि

अगर चेकर आ भी गया तो ये बड़े आदमी है कह-सुनके छुड़ा देंगे।"

बात माकूल थी इसपर वह क्या बोलते ! केवल इतना कहकर चुप हो गये—"फिर भी सफर करते वक्त विशेष सावधानीकी जरूरत होती है। दिनपर दिन दुनियाके हथकण्डे बढ़ते जा रहे हैं—इनसे बचते रहने के लिये बड़ी चालाकी, बहुत होशियारी और बड़ा सतर्क रहनेकी जरूरत है।"

"ओफ, कितना मुश्किल है इस संसारमें मनुष्यको पहचानना।" कहते हुए रंभा अपने गद्दे पर लेटकर इसी विषयमें न जाने क्या २ सोचने लगी। उसके पिता भी करवट बदलकर अर्ध-खुले नेत्रोंसे खिड़की के कांचको देखते हुए गाड़ीके मन्द हिचकोलोंका आनन्द लेने लगे। बड़ी देरमें एक स्टेशन और आया और दस बारह मिनट ठहरकर गाड़ी फिर पूर्ववत अपनी दिशाको चलने लगी। ठण्ढी हवाके झोंकोके वशीभूत होकर, सफरमें सदैव सतर्क रहनेवाले वे महाशय भी निन्द्रामें डूब गये और उनकी नाकसे खर्र-खर्र खर्राटेकी आवाज निकलनी शुरू हो गई थी। रंभाने उठकर देखा पिताजी सो रहे हैं, किन्तु शंका मिटानेके लिये धीरेसे पुकारा 'पिताजी' दो स्वासोंमें 'खर्र' की आवाज बन्द रही और फिर चलने लगी। रंभाको विश्वास हो गया कि वे सो रहे हैं। अब उसने धीरेसे किताब उठाई और उसमेंसे कागजका एक टुकड़ा निकालकर पेंसिलसे कुछ लिखने लगी। बहुत जल्दी २ कुछ लिखकर उसने मोड़ा और उसमें एक छपा हुआ छोटा-सा कार्ड रखके तह बना ली, फिर सिरहाने रखकर चुपचाप लेट गई।

अगले स्टेशनपर गाड़ी फिर रुकी। दो जगह गाड़ी ठहरनेपर भी वे

महाशय अभी तक आरामसे पड़े हुए सो रहे थे। रंभा यद्यपि लेटी हुई अवश्य थी परन्तु सोई नहीं थी, उसके अर्ध-खुले नेत्र दरवाजेपर और कान किसी आवाज की खोजमें लगे हुए थे। कुछ देर बाद इञ्जिनने सीटी दी और भक्-भक् करके गाड़ी चल पड़ी। गाड़ी चलनेके साथ ही उस डिब्बेका दर्वाजा बड़े आहिस्तासे खुला और किसीने भीतर झांक कर देखा। यह हरपाल था, अपने उसी छद्म-वेषमें। वे महाशय सो रहे थे और रंभाके नेत्र भी इस समय बंद ही थे, दोनों को सोता देख हरपाल दबे पांव ऊपर चढ़ आया और क्षण भरके लिये खड़ा होकर वहांकी स्थितिका अंदाजा लगाने लगा। डिब्बे भरमें एकदमसे सन्नाटा छाया हुआ था, केवल गाड़ीके पहियोंकी आवाज ही सुनाई दे रही थी और कुछ नहीं, चारों ओर एकान्त रूपसे निस्तब्धता छाई हुई थी।

बाप और बेटी दोनोंको सोता हुआ देख हरपालने दबे पांव उन महाशयके सिरहाने पहुँच कर वह मनीबेग उठा लिया जो अबसे दो घन्टे पूर्व वह स्वयं उठाकर रंभाके साथ २ लाया था, और जिसे उड़ानेका निश्चय भी वह उसी समय कर चुका था, जिस समय कि वह पहली बार उसके हाथोंमें आया था। मनीबेग उठाकर वह पुनः पीछेको चलनेके लिये मुड़ा—परन्तु यह क्या? ज्यों ही शीघ्रतासे वह वहांसे पीछे मुड़ा, एक जोरदार झटका उन महाशयके हाथमें लगा और वह तुरन्त उठ बैठे। अब हरपालको पता चला कि मनीबेग उन महाशयकी किसी चीजसे बांधा हुआ था जिसके उठाते ही उनकी आंख खुल गई और वे उसे पकड़नेके लिये उसकी तरफ लपकके उठे।

उन महाशयको अपनी तरफ झपटते देखकर हरपालने बड़ी फुर्तीसे

अपने ऊपरकी चादर उतार ली और उसे उनके ऊपर डालकर पुनः गद्दे पर गिरा दिया। बड़े कौशलसे ज्यों-त्यों करके उसने बलपूर्वक उन महाशयको कपड़ेसे बांध दिया। यद्यपि वे महाशय प्रौढ़ होते हुए भी हरपाल जैसे नवयुवकके लिये काफी थे पर तो भी उसकी फुर्ती, सतर्कता एवम् कार्य-कुशलताके आगे उनकी एक न चली और अन्तमें हरपालकी चादरमें लिपटकर उन्हें बेबस हो जाना ही पड़ा। रंभा इस समय भी पूर्ववत: चुपचाप अपने गद्दे पर पड़ी हुई थी—किन्तु वह वास्तवमें सो रही थी अथवा जाग रही थी यह तो वही जाने, हां कभी २ उसकी आंखों की पलकोंका कांप जाना स्पष्ट रूपसे उसके जागनेका प्रमाण दे रही थीं।

गाड़ीकी चाल चलते २ क्रमशः कम होने लगी, सम्भवत: अगले स्टेशन पर उसे खड़ा होना था। हरपाल भी अपना काम खतम करके मनीबेग हाथमें लिये हुए उतरनेके विचारसे ट्रेनके ठहरनेकी प्रतीक्षा करने लगा। एकबार उसने खिड़कीसे झांक कर देखा—सामने कोई कोई आधा फलाङ्गके फासले पर स्टेशनकी बत्तियां जल रही थीं, अब उसने वहां ठहरना उचित न समझा और उतरनेके लिये उद्यत होकर उसने डिब्बेका दर्वाजा खोल लिया किन्तु उसी क्षण पीछेसे रंभाकी आवाज सुनाई दी—"चोर कहीं के!" आवाज सुनते ही हरपालको मानों काठ मार गया। उसने तुरन्त पीछे मुड़कर देखा रंभा खड़ी हुई मुस्करा रही थी।

अब गाड़ी स्टेशन पर खड़ी हो चुकी थी। यदि रंभा चाहती तो शोर मचाकर उसे गिरफ्तार करा सकती थी परन्तु उसने ऐसा नहीं किया, प्रत्युत अपने हाथमें थामी हुई कोई वस्तु बड़ी शीघ्रतासे उसके हाथमें

थमाकर वह धीमे स्वरसे बोली—"फौरन गाड़ीसे उतर कर भाग जाओ।" हरपाल उसके मुखसे आश्चर्य भरी बात सुनकर अवाक् रह गया, वह नहीं समझ सका कि अपने पिताका माल जाते हुए देखकर भी यह लड़की उसके साथ ऐसा व्यवहार क्यों कर रही है! समय विचार-सागरमें गोते लगानेका नहीं था, इस लिये वह गाड़ी रुकते ही प्लेटफार्म पर उतर पड़ा और क्षण-मात्रमें लम्बे २ पग भरता हुआ कहींका कहीं जा पहुँचा। यह थी उसके भाग्यकी बात!

हरपालके जाते ही रंभा एकबारगी ही चिल्ला पड़ी—"पिताजी, पिताजी, यह आपको क्या हुआ? कहते हुए बड़ी शीघ्रतासे अपने पिताको बंधनसे मुक्त किया। हाथ पैर खुल जाने पर वे महाशय तड़प कर उठे और बड़ी बड़ी आंखोंसे अपनी पुत्रीकी ओर देखते हुए बोले—"कहां गया वह बदमाश? तू भी उसको न रोक सकी?" रंभाने बड़े शान्त भावसे उत्तर दिया।

"मैं सो रही थी पिताजी! क्या हुआ? आप इतने घबरा क्यों रहे हैं?"

"आग लगे ऐसी नींदको! वह बदमाश मुझको बांध-बूंध कर मनीबेग तक उड़ा ले गया और फिर भी तेरी आंख नहीं खुली," इस समय महाशयजीका पारा बुरी तरहसे चढ़ा हुआ था।

रंभा बोली—"गाड़ी रुकनेके झटकेसे जिस समय मेरी आंख खुली तभी मैंने देखा कोई मनुष्य दर्वाजा खोलकर बाहर गया है, मैं समझी कि कोई मुसाफिर होगा।"

"अरे पगली, जब गाड़ी कहीं रुकी ही नहीं तो मुसाफिर कहांसे चढ़

जाता ?" महाशयजीने बिगड़ते हुए कहा—"तूने तो सर्वनाश करा दिया रंभा ! मनीबेगमें पूरे पांच सौ रुपये थे—पूरे पांच सौ।"

"जो होना था वह तो हो गया, उसके भाग्यके थे, वह ले गया इसमें मैं या आप कर भी क्या सकते थे ?"

"इतनी बड़ी रकम भी कोई यों ही खोना पसन्द करेगा ! उसे तूने किस तरफको जाते देखा है ?"

"गाड़ीसे उतरते ही वह उस तरफको चला गया था"—संकेतसे बताते हुए रंभाने कहा।

"अच्छा तू यहीं बैठ मैं अभी जाकर इसकी इत्तला पुलिसमें करता हूँ।" कहते हुए वे महाशय बड़ी शीघ्रतासे रेलवेकी पुलिस दफ्तरकी ओर चल दिये, किन्तु गार्डने सीटी दी। महाशयजी दौड़ते हुए गार्डके पास पहुँचे और उन्हें सारी बातें बताकर दो मिनटके लिये गाड़ी ठहराने की प्रार्थना की, जिसे गार्ड साहबने स्वीकार कर लिया। इसके बाद उन्होंने पुलिस अधिकारीसे मिलकर सारा मामला समझा दिया। पुलिस अधिकारीने उनके बयान कलमबंद करके उन्हें बिदा करते हुए कहा—

"ट्रेन अधिक समय तकके लिये रोकी नहीं जा सकती इस लिये आप जा सकते हैं। पुलिस चोरका पता लगानेके लिये भरसक चेष्टा करेगी—परिणाम जो कुछ होगा आपको मालूम हो जायगा।"

"धन्यवाद !" कहते हुए वे महाशय पुन: अपने डिब्बेमें जाकर बैठ गए और गाड़ी चल दी।

गाड़ी छूटनेके बाद पुलिस अधिकारीने पांच सौ रुपये उड़ानेवालेको पकडनेके लिये सिपाहियोंको जिधर तिधर स्टेशन पर तथा उससे बाहर

सड़क पर भेजा। बहुत शीघ्र ही कुछ सिपाहियोंकी टोली चली और एक-एक करके स्टेशनके हर कोनेमें उसे ढ़ूंढने लगी।

हरपाल गाड़ीसे उतरते ही स्टेशनके निर्जन स्थानकी ओर जाकर एक वृक्षके नीचे बैठ गया था। इस ओर रोशनी आदि का कोइ विशेष प्रबन्ध नहींथा, इसलिये उसे उस अन्धकारपूर्ण स्थान हीमें बैठकर समयकी प्रतीक्षा करना कहीं अधिक उपयुक्त था। उस वृक्षके पास ही मालगाड़ीका एक बिना पहियोंका पूरा डिब्बा रखा हुआ था जो शायद रेलवेके कैरिज-स्टाफवालोंके औजार आदिके रखनेके काममें आता था। वह डिब्बा ईंटोंकी दो छोटी दीवारोंके सहारे रक्खा होनेके कारण उसके नीचे कोई एक फुट जगह खाली थी, जिसमें कैरिज-स्टाफके कर्मचारियोंने जूट इत्यादि बुरी तरहसे बखेर दिया था। हाथ पोंछे हुए मैले जूटके भीतर ही हरपालने वह मनीबेग छिपा दिया और आप निश्चित हो उसी वृक्ष के नीचे पड़कर मथुरा जानेवाली गाड़ीका इन्तजार करने लगा। वह इस समय बेफिकर था, उसने दिलमें सोच लिया था कि चोरी करते समय उसे किसीने पहिचाना नहीं होगा, क्योंकि आंखोंके अतिरिक्त शरीरका और कोई भी भाग उसका खुला नहीं था। हालांकि वहीं पड़े २ उसने महाशयजीका पुलिस अधिकारीके साथ बातचीत करते हुए देख लिया था और गाड़ी छूटनेके बाद पुलिसवालोंको भी इधर-उधर झप-टते हुए वह देख चुका था, परन्तु फिर भी वह एक प्रकारसे सन्तुष्ट ही था, इसका कारण था उसका वही छद्म बेष—उसे पूरा विश्वास था कि इस वेषमें उसे कोई भी नहीं पहचान सकेगा। हां, एक आशंका कभी-

कभी उसे अवश्य भयभीत कर देती थी और वह आशंका थी रंभाका पहचानना—उसे भय था कि कहीं वह उसे न पहचान गई हो—अगर पहचान गई होगी तो अपने पितासे भी अवश्य उसने बता दिया होगा ! किन्तु फिर उसे रंभाकी दी हुई वस्तुका ख्याल आया। वह सोचने लगा कि रंभाने क्यों उसके साथ ऐसा व्यवहार किया ! बिना पकड़ाये हुए उसने उसे आने क्यों दिया ? उसके आते समय वह खड़ी हुई मुस्करा भी तो रही थी—यह क्यों ? उसकी दी हुई वस्तु क्या हो सकती है ? आखिर इससे उसका प्रयोजन ? ऐसे ही न जाने कितने विचार एकबारगी ही उसके दिमागमें उठ पड़े। अन्तमें उसने इन सबसे यह तत्व निकाला कि रंभा यदि उसे पहचान भी गई होगी तो भी वह उसके बारेमें किसीसे कुछ कहेगी नहीं—इस ख्यालके आते ही एक बार वह फिर निश्चिन्त हो गया।

सिपाहियोंमें एक बृद्ध सिपाही जिसकी आयु लगभग पचास वर्षकी होगी घूमते हुए उसी तरफको आने लगा, इस सिपाहीको अपनी तरफ आते देख हरपाल कुछ चौकन्ना हो गया और संभलकर वहीं ज्योंका त्यों चुपचाप लेट गया सिपाहीको आते हुए रास्तेमें मुसाफिरोंको पानी पिलानेवाला मिल गया और वह भी साथ २ चलता हुआ उससे कहने लगा।

"आज क्या बात हुई जमादार साहब ! सारे सिपाही इधर-उधर भागे फिर रहे हैं।"

सिपाहीने उत्तर दिया—"क्या बतावें यार, इन चोर, उचक्कोंके कारण हमें रातको भी चैन नहीं मिलता—आज किसी आदमीने एक

भले मुसाफिरके पांच सौ रुपये उड़ा लिये हैं, उसीको ढूंढ़नेके लिये हम लोग भागे फिर रहे हैं। पुलिसकी नौकरी भी बड़ी झंझटोंकी नौकरी होती है।"

"अब क्या वह ढूंढ़नेसे मिल जायेगा? न जाने कहांका कहां पहुँचा होगा।" कहता हुआ पानी पिलानेवाला दूसरी तरफको चला गला गया, सिपाही भी कुछ बड़बड़ाता हुआ वहीं टहलने लगा, वह इस समय चारों ओर बदमाशोंको कोस रहा था—"इन हरामजादोंको रातमें भी नींद नहीं आती," कहता हुआ वह सिपाही उसी तरफको चलने लगा जिस तरफ हरपाल चुपचाप लेटा हुआ उन दोनोंकी बातें सुन रहा था। उसे इस समय सिपाहीके ऊपर बड़ा गुस्सा आ रहा था। गुस्सा आना भी स्वाभाविक ही था, आखिर वह भी तो इस समय एक चोर ही था। जीमें तो एकबार आया कि एक घूंसा सिपाहीकी कनपटीपर जड़ दे, परन्तु फिर समय ठीक न देखकर उसे चुप ही हो जाना पड़ा। सिपाही तो एक यों ही बूढ़ा खूसट था—दृष्ठिके अतिरिक्त शरीरका समस्त भाग शिथिल एवं दुर्बल हो चुका था, तिसपर उजालेसे आनेके कारण हरपालको वह न देख सका। बेचारा इधर उधर भागनेके डरसे बचनेके लिये अपनी धुनमें उस अंधेरे स्थानमें चोरोंकी तरह टहल रहा था। टहलते २ ही हठात् उसका पैर हरपालके पैरकी उंगलियोंपर पड़ा, नंगा पैर होनेसे उसकी उंगलियोंमें असह्य पीड़ा हो उठी। इस बार वह सिपाहीसे उसका बदला लिये बिना नहीं रुक सका और तड़पके उठकर खड़ा हो गया। सिपाही भी पैरपर पैर पड़ जानेके कारण गिरते २ बचा; अभी वह संभल भी न पाया था कि हरपाल उठकर एक घूंसा उसकी कनपटीपर इस जोरसे

रसीद किया कि वह वृद्ध सिपाही उसे सह न सका और धड़ामसे पृथ्वीपर गिर गया। उसके गिरते ही हरपालने उसके सिरकी पगड़ी उतार कर उसके मुंहमें ठूंस दी और उसे उसी वृक्षमें कसकर बांध दिया।

अब हरपालने वहां ठहरना उचित न समझा और जूटके ढेरमेंसे मनीबेग निकालकर वहांसे एक तरफको चल दिया। प्लेटफार्म खतम होने पर उसे एक लोहेका जंगला मिला जिसे बड़ी आसानीसे पार करके वह दूसरी तरफ जा पहुँचा और वहांसे जैसे-तैसे अंधेरेमें ठोकर खाता हुआ बड़ी-बड़ी कठिनाइयोंसे पक्की सड़कपर पहुँच गया। यहां पहुँचकर वह सीधा मथुराकी तरफको पैदल ही चलने लगा। सड़क बिल्कुल सुनसान पड़ी हुई थी। हरपाल की चाल बहुत तेज थी इसलिये स्टेशन बहुत जल्दी ही काफी पीछे छूट गया, अब हरपालको पुलिसका भी तनिक भय नहीं रह गया था। इसलिये वह बेफिकरीसे आगे बढ़ता रहा। आधा घण्टा बाद एक मोटर लारी पीछेसे आती हुई दिखाई दी, पास पहुँचनेपर हाथके इशारेसे हरपालने उसे रोक लिया और ड्राइवर से कह सुनकर वह उसमें बैठ गया। लारी भी मथुरा जा रही थी इसलिये सुबह होते २ पुनः मथुरा पहुँच गया। यहां पहुँचकर उसने रंभाकी दी हुई वस्तु खोलकर देखी—कागजके टुकड़ेपर लिखा था, "अगर तुम नौकरी करना चाहते हो तो विजिटिंग कार्डके छपे हुए पतेपर पहुँच जाओ।" बस, उसमें इतना ही था। हरपालको उसे पढ़कर और भी प्रसन्नता हुई और अब वह एक नई उमंगके साथ जल्दी अपनी मांके पास पहुँचनेकी कोशिश करने लगा।

सातवां परिच्छेद

पिछला कर्जा एकदमसे चुका देनेके अतिरिक्त आठ सौ रुपया और लेकर भुल्लन ग्वालेने अपनी लड़की चन्द्रकलीको लाला कंचनलालके हाथों सौंप दी। भुल्लनकी वह झोंपड़ी अब चार पक्के कमरों और एक छोटे दालानमें परिवर्तित हो चुकी थी, उसीके साथ एक बीघेका बाड़ा भी खींच लिया था जिसमें गोभी और बैंगन खूब जोरोंके साथ खड़े हुए थे। पशुओंकी संख्या भी अब दिनपर दिन बढ़ती जा रही थी। वही भुल्लन, जो अबसे कुछ दिन पहले दरिद्र बना हुआ कंगालीके दिन पूरे कर रहा था, अब दस दस पांच-पांच रुपये देकर औरोंसे करारा ब्याज बसूल कर रहा था। पहले शुरू शुरूमें इस कुत्सित कार्यके लिये लोग उसकी निन्दा करने लगे थे—उसकी ही क्यों वरन् जमींदार बाबूपर भी खूब आवाजें कसी जाने लगी थी, परन्तु धीरे २ मामला शान्त होता गया और उनका कार्य क्रमशः पुनः उसी रीतिसे चलने लगा।

चन्द्रा जिस समय लाला साहबके घर आई थी उस समय उसकी आयु पन्द्रह वर्षकी थी और लाला साहबकी थी साड़े उनचास वर्ष की। उसके आते ही लाला साहब सारा काम धन्धा दीवानजीको सौंप स्वयं बिलासकी रंगमयी बहती नदीमें डूबने उतराने लगे। पुष्पाको अपने पिता के इस घृणास्पद कृत्यपर बहुत क्रोध आया। सम्भव था, यदि उसे पहले यह बात ज्ञात हो जाती, तो वह भरसक इसमें बाधा डालनेकी चेष्टा भी करती, परन्तु अब करती क्या बेचारी—लाचार थी, उसे मालूम उस समय

हुआ, जब कि चन्द्रा सौतेली मां बनकर उसके घरमें आ धमकी। अब क्या हो सकता था, जो होना था सो हो गया—सांप निकल चुका था लकीर पीटा करो, उससे क्या परिणाम? चन्द्राका आना ही उस घरमें पुष्पाके लिये मानों असंख्य आपत्तियोंकी उत्पत्तिका कारण बना। कुमार सिंह और पुष्पलता दोनों ही चन्द्रासे एक बारगी ही क्षुब्ध हो उठे, प्रायः दोनों ही उससे असन्तुष्ट थे।

चन्द्राने आते ही लाला साहबको अपनी मुट्ठीमें कर लिया। बापने जैसा सिखाया था और जिस रीतिसे उनके साथ व्यवहार करनेका आदेश किया था, उसमे भी कहीं अधिक उसने अपना जाल उस घर पर डाल दिया। नित्य नये-नये ढङ्गों तथा अचूक नाज नखरे दिखाकर लाला साहब पर उसने आशातीत सफलता प्राप्त कर ली और अब वही उस घरकी कर्ता धर्ता सभी कुछ समझी जाने लगी थी। नौकर चाकर सभी कोई नत मस्तक हो उसकी आज्ञा पालनेमें ही अपना कल्याण समझते थे—चन्द्राने उनकी दशा ठीक एक ऐसे यन्त्रकी सी कर दी थी, कि जिसे जब चाहा चालू कर दिया।

एक दिनकी बात है कि कुमार साढ़े बारह बजेके करीब पढ़ कर आया। गर्मीके दिन थे, धूप खूब चिलचिलाके पड़ रही थी। वह इस समय एफ० ए० फाइनलमें पढ़ रहा था, डी० ए० वी० कालेज उनके घरसे पूरे साढ़े तीन मील पर था। इन्टरमीडियेटका स्टूडेन्ट होते हुए भी उसने आज तक कभी हैट नहीं लगाया था और न वह कोट पतलून आदि आडम्बरोंको पसंद करता था। वह एकदमसे सादा रहता था; किश्तीनुमा टोपी, कुर्ता, धोती और चप्पल बस! यही उसके नित्य

के कपड़े थे, हां कभी २ पाजामा अवश्य पहन लिया करता था। कुमार ने अपनी साइकिल नीचेके बरामदेमें खड़ी की और उसके कैरियरमें बंधी हुई पुस्तकोंको खोलकर खटाखट करता हुआ ऊपर चढ़ गया। उसका कमरा ऊपरके हिस्सेमें जीनेसे तीन कमरे छोड़कर चौथा था, उसीमें वह और पुष्पा दोनों बैठकर पढ़ा करते थे। कुमारने गर्मीके मारे किताबें रखकर नहानेके ख्यालसे बड़ी जल्दी अपने कमरेकी कुंडी खोली और किताबें मेज पर पटक कपड़े उतारने लगा। इतने ही में दैवयोगसे चन्द्रा भी किसी कामसे उधर निकल आई और कुमारको अकेला देख उसके दर्वाजे पर ठिठक गई। कुमारकी दृष्टि उस पर पड़ चुकी थी, परन्तु फिर भी वह उससे न जाने क्यों नहीं बोला बल्कि जानबूझकर उसने अपनी नजर दूसरी तरफ घुमा ली, शायद वह उससे बोलना ही न चाहता था। चन्द्रासे न रहा गया आखिर वह बोल ही पड़ी—

"ओ हो! आज तो बड़ी तेजीमें पढ़कर आ रहे हो, मास्टरोंने कहीं पीटा तो नहीं है?"

"वह भला मुझे क्यों पीटते?" कुमारने भौंहें सिकोड़के उत्तर दिया।

"पढ़ते जो हो उनसे, यदि पीट भी दें तो आश्चर्यकी कौन बात है?" कहती हुई वह कमरेके भीतर चली आई और उसके सामने खड़ी होकर बड़ी २ आंखोंसे उसकी तरफ घूरने लगी।

कुमार बोला—"जो लड़का पढ़ता नहीं वही मार खाता है, सब कोई थोड़े ही वैसे होते हैं।"

चन्द्रा, कुमारके और पास खिसक आई और उसे अपनी टेहुनीका

हलका धक्का देते हुई बोली—"तुम बड़े अच्छे लड़के हो कुमार ! इसीसे मास्टर आदि सब लोग तुम्हें प्यार करते हैं।"

वह उसका अभिप्राय न समझ सका—समझनेके लिये पूछना पड़ा—"तो इससे तुम्हारा क्या मतलब ?"

"मतलब ?" मधुर हास्यके साथ एक भेदभरी चितवनका कटाक्ष करते हुए वह बोली—"मैं भी तुम्हें प्यार करती हूँ कुमार ! सब तुम्हें प्यार करते हैं, सभी तुमसे बातें करना पसंद करते हैं, पुष्पा भी तो हर वक्त तुम्हारे ही साथ रहना चाहती है—फिर मैं ही क्यों इस प्यारी वस्तु को प्यार करनेसे चूकूं ?"

कुछ समझमें नहीं आ रहा है—"यह आज तुम्हें हो क्या गया चन्द्रा ?"

"मैं कुछ न छिपाऊंगी कुमार ! आज मुद्दतसे छिपी हुई हृदयकी भावनाओंको तुम्हारे आगे उगल देना चाहती हूँ। मैं तुमसे प्यार करती हूँ—शायद पुष्पासे भी अधिक। तुम्हें याद होगा जब मैं दूध देने यहां आया करती थी तो पुष्पासे बात करनेके बहाने घंटों तुम्हें देखा करती, उस समय तुम बड़ी फुर्तीसे एक दृष्टि मुझ पर डालकर मुंह दूसरी तरफ फेर लिया करते थे। जानते हो, उस समय मेरे हृदयकी क्या दशा होती थी, मुझे मन मसोस कर रह जाना पड़ता था और मैं परमात्मासे प्रार्थना किया करती कि—हे भगवान मुझे शक्ति दो जो मैं इस अभिमानीका दर्प चूर्ण कर सकूं। प्रार्थना स्वीकार हुई और आज मुझे तुम्हारे जमींदारकी पत्नी बनकर अपनी इच्छाको तुमसे कहने का सुअवसर हाथ आया।"

"यदि जमींदार महोदयकी धर्मपत्नी अपने स्वामिभक्त नौकरोंको प्यारकी दृष्टिसे देखती हैं तो इससे सौभाग्यकी बात उसके लिये और क्या हो सकती है। परमात्मा आपकी इस सहृदयताका अवश्य कुछ न न कुछ उचित पुरस्कार देंगे। आप वास्तवमें धन्यवादकी पात्री हैं।"

"उंह! मुझे इस शुष्क धन्यवादकी जरूरत नहीं, और न जरूरत है मुझे तुम्हारे उपदेशोंकी—हां, जरूरत है मुझे तुम्हारे प्रेमकी—जिसे, मुझे पूरी आशा है कि तुम सहर्ष स्वीकार कर लोगे?"

"क्या गजब ढा रही हो तुम चन्द्रा! एक बड़े जमींदारकी स्त्री होकर तुम्हें ऐसी बातें कहते हुए जरा भी संकोच नहीं हो रहा है। अपने साथ मुझे भी इस महान पापके घोर अन्धकारमें ढकेल रही हो।"

"यह भी कोई पाप है कुमार? क्या किसीको प्यार करना भी गुनाह है?"

"किसीको प्यार करना कोई गुनाह नहीं, परन्तु यदि वह सीमाके अन्दर हो।"

"सीमाके अन्दरसे तुम्हारा क्या मतलब?" चन्द्राने और आगे बढ़ते हुए पूछा।

"यदि प्रेममें सचाई है, यदि प्रेममें स्वार्थ और वासनाका लेशमात्र भी प्रवेश नहीं है, यदि उस प्रेमको पानेका पहलेसे किसीको अधिकार नहीं है—तो ऐसे प्रेमको किसीको भी सौंप देना कोई पाप नहीं। याद रखो चन्द्रा, सचा प्रेम ही नहीं, अपितु सच्चाईकी हर वस्तु बड़ी चमत्कारिक होती है।"

"किन्तु यह प्रेम तो मैंने पहले ही से तुम्हारे लिये रख छोड़ा है, शुरूसे ही मैं तुम्हें प्यार करती हूँ।"

"हां, यही बात तुमने एक रोज शायद छेदीलालसे भी कही थी।" कुमारने व्यंगसे कहा। छेदीलालका नाम ऐसे मौके पर सुनते ही चन्द्रा कुछ सकपका सी गई, परन्तु फिर भी ढिठाईसे बोली—

"मैंने कब क्या कहा छेदीलालसे बाबा?"

"उस रोज रातमें"—कुमारने कहना शुरू किया—"जब तुम कोठी से निकल कर जल्दी-जल्दी घरको जा रही थी और उस अंधेरेमें छेदीलाल ने तुमसे मिलकर अपने प्रेमका रोना रोया था तब उसके जवाबमें तुमने क्या कहकर उसकी तसल्ली की थी जानती हो? तुमने कहा था—छेदीलाल, तुम समझते होगे मैं तुम्हारे प्रेमका अनादर कर रही हूँ। यह बात नहीं, विश्वास रक्खो इस हृदय पर पहले तुम्हारे ही प्रेमकी छाप पड़ी है अतः अन्तिम श्वास तक भी इसका मिट जाना संभव नहीं·······"

"बस-बस बस करो कुमार!" एकदमसे भयभीत होकर चन्द्राने अपना सिर पकड़ लिया और कुरसीके डण्डेका सहारा लेकर धम्मसे वहीं बैठ गई। कुमारने भी अधिक कुछ कहना उचित न समझा और दूसरी तरफ जाकर एक कुरसी पर बैठ गया।

चन्द्राने स्वप्नमें भी यह नहीं सोचा था कि कुमारको उसकी काली करतूतका सब पता है। उस रोज रातकी सारी बातें सुन कर वह एक दमसे भयभीत हो उठी; उसे डर था कि कहीं जमींदारके कान तक यह बात न पहुँच जाये नहीं तो अनर्थ हो जायगा। वह कुमारको मनानेके

लिये उसके पास पहुँची और हाथ जोड़कर कहने लगी—"मुझे माफ करो कुमार! मेरी लाज अब तुम्हारे हाथ है; किसी पर यह भेद जाहिर न करना नहीं तो मेरी बड़ी मट्टी खराब होगी। मेरे बाप और भाईको लोग बदनाम करेंगे।"

"फिर क्यों तुमने ऐसा काम किया? और यदि किया भी था तो उसे निभाया क्यों नहीं?"

"अपने बापकी दरिद्रावस्थाका खयाल करके ही मुझे ऐसा करनेके लिये वाध्य होना पड़ा, कुमार! उनकी कंगाली और दीन-दशाके आगे मेरा प्रेम नहीं ठहर सका और मुझे मजबूर होकर छेदीलालके प्रेमसे हाथ खींचना पड़ा। अब मेरी वह इच्छा पूरी हो गई है, मेरे पितृ-गृहमें अब सभी सुख-पूर्वक अपना जीवन बिता रहे हैं और कोई लालसा अब मेरे मनमें नहीं रही और यदि है भी तो वह केवल यही कि जवानी के इन उमंग भरे दिनोंमें, अपने पति जमींदार बाबूकी आड़ लेकर लोगों की चोरीसे तुम्हारे जैसा मनचला प्रेमी चाहती हूँ। स्पष्टतया मैं तुमसे कह देना चाहती हूँ कि लोगोंकी आंखोंमें धूल झोंक कर मैं तुम्हारे साथ मन चाहा सुख भोगना चाहती हूँ। मेरी इस उत्कट अभिलाषाकी अवहेलना न करो कुमार। मेरी बात मान लेने पर तुम्हें कोई कष्ट न होगा; सदा ही तुम्हें सुखी रखनेकी चेष्टा करूंगी।

बुद्धिमान लोग बात बहुत दूर तककी सोचा करते हैं, तुम भी फिर क्यों नहीं सोचते? मेरे पतिकी पकी हुई उमर है। क्या भरोसा उनका आज रहे कल गये। विश्वास करो कुमार, मेरी इच्छा पूरी करने पर तुम्हीं उनके पीछे इस विपुल सम्पतिके एकमात्र अधिकारी बनोगे और

मैं तुम्हारे इन चरणोंमें रह कर तुम्हारी सेवा और पूजा किया करूंगी।"

कहती हुई चन्द्राने कुमार सिंहके पैर पकड़ लिये और कातर दृष्टिसे उसकी तरफ देखने लगी। इस समय उसके सजल नेत्रों और मुखपर असह्य-वेदनाके चिन्होंको देखकर कोई भी कठोर हृदय पानी पानी हो जाता। कुमारने देखा और इस समयकी उसकी दशा पर आश्चय-चकित हो देखता ही रह गया। वह हैरान था इतने बड़े जमींदारकी पत्नी जिसे सुख-सम्पति और हर प्रकारके ऐश्वर्य प्राप्त हैं, केवल उसका प्रेम पानेके लिये कितनी अधीर हो रही है। अब उसकी समझमें आया कि केवल धनी बन जानेसे ही मनुष्यकी समस्त इच्छाओं की पूर्ति नहीं हो जाती। बल्कि युवावस्थाका मुख्य आनन्द किसी और ही वस्तुसे प्राप्त होता है। इतनी देरमें वह कुछ भी न समझ सका कि उसे अब क्या करना उचित होगा? एक बार उसके मनमें आया कि उसकी बात स्वीकार करले, इस खयालसे नहीं कि भविष्यमें वह एक बड़ी सम्पत्तिका उत्तराधिकारी बन जायगा बल्कि, चन्द्राकी करुणावस्था और उसके भोलेपनने कुमारके मनका सुमेरु डांवाडोल कर दिया; किन्तु उसी क्षण निमेष-मात्र ही में उसका वह भाव जाता रहा और चन्द्राको ठीक मार्ग पर लानेके लिये कटिबद्ध हो उसने उसे उठाकर पासकी कुरसी पर बैठा दिया।

चन्द्रा यह जाननेके लिये कि कुमारका अब क्या विचार है, प्रश्न सूचक दृष्टिसे उसकी तरफ देखने लगी। कुमार उसका अभिप्राय समझ गया। सामनेकी कुरसी पर बैठते हुए उसने कहना शुरू किया—
"देखो चन्द्रा, मेरे पिता तुम्हारे पतिके एक पुराने और स्वामिभक्त

नौकर हैं। उन्होंने आजतक भूलसे भी अपने मालिकके विरुद्ध कोई पाप नहीं किया। मैं उन्हींका पुत्र हूँ, तुम्हीं कहो मैं ही फिर कैसे उनकी इच्छाके विरुद्ध यह दुष्कर्म कर सकता हूँ ? मेरी दृष्टिमें तुम्हारे पति और तुम दोनों ही बराबर हैं—दोनों ही मेरे लिये पूजनीय हैं। अपनी मां से भी मैं तुम्हें अधिक मानता हूँ फिर क्यों इस अन्धकारकी ओर ढकेल रही हो ? क्या ही अच्छा हो यदि एक आदर्श माताकी तरह तुम मुझे और गांवके अन्य लोगोंको अपने सद्-उपदेशों से वशीभूत कर लो, सभी एक तरफसे तुम्हारी पूजा करने लगें, सभी मुक्त-कण्ठसे तुम्हारी प्रशंसा करने लगें......"

"बस करो कुमार, मैं जानती हूँ कि तुम एक स्वामि-भक्त नौकरके होनहार लड़के हो। मैं यह भी खूब जानती हूँ कि मैं जो काम कर रही हूँ, वह घोर नरकमें मुझे ढकेलनेके लिये काफी है। परन्तु तुम्हें मालूम होना चाहिये कि मैं जो कुछ मनमें संकल्प कर चुकी हूँ वह अवश्य पूरा करूंगी। इस दुनियावालोंसे मेरी कोई शत्रुता तो नहीं है, लड़ाई है मेरी उस निर्दयी परमात्माके साथ। क्यों उसने मेरे पिताको ऐसी दीन-दशाको पहुँचाया ? क्यों नहीं उसने उनकी कंगालीका ध्यान किया ? न वे लोग ऐसे दरिद्र होते और न मुझे एक बूढ़ेके साथ बिकनेके लिये बाध्य होना पड़ता। तुम्हीं न्याय क्यों नहीं करते कुमार ? क्या इस दुष्कार्यमें केवल मेरा ही दोष है ? क्या परमात्मा इस पापको करानेमें सर्वथा निर्दोष है ? बोलो सत्य बात कहनेमें हर्ज ही क्या है ?"

"यह मैं खूब समझता हूँ चन्द्रा, इस मामलेमें तुम यदि बिलकुल नहीं तो पैंतीस प्रतिशत् निर्दोष जरूर हो। अपने पिताकी दरिद्रता दूर

करनेके लिये ही तुम्हें यह कठिन एवं कटु-त्यागका व्रत धारण कर अपने आपको बेच देना पड़ा था। तुम्हारे पिता इतने कंगाल क्यों हुए? इसके लिये तुम उस दयालु और न्यायकारी परमात्माको दोषी नहीं ठहरा सकती।"

"क्यों? इस बेमेल विवाहका कारण तो उनकी कंगाली ही हुई न? फिर क्यों न उसे दोष दूं?"

"यह तुम्हारा अन्याय है। वे अपने पूर्व जन्मके संस्कारसे इस दशाको पहुँचे और तुम अपने पूर्व पापोंके फल-स्वरूप यह दुःख भोग रही हो, फिर इसमें परमात्माको दोष देना तुम्हारा अन्याय नहीं तो और क्या है?"

"कुछ भी हो मैं अपने जिद्की पक्की हूँ; एकबार जो सोच चुकी हूँ, उसे अवश्य पूरा करूंगी। यदि तुमने मेरी बात नहीं मानी तो इसका दुष्परिणाम क्या होगा? यह शायद तुम सोच भी न सकोगे। और मैं—मैं फिर खुल्लमखुल्ला छेदीलालको अपना······"

अभी वह इतना ही कह पाई थी कि उसी समय कमरेके दर्वाजे पर खड़ी हुई एक चौदह या पन्द्रह वर्षकी नवयुवती पर उसकी दृष्टि गई जिसे देखते ही चन्द्रा कुछ घबरा-सी गई और तुरन्त वहांसे उठकर कमरे के बाहर निकल गई। कुमारने भी उस नवयुवतीको देख लिया था; यद्यपि उसने पहले बहुत कम ही उस युवतीको उधर आते हुए देखा था, पर तो भी वह पहचान गया कि वह छेदीलालकी छोटी बहन थी। इस समय उसके वहां आनेका क्या कारण हो सकता है? यह जाननेके लिये वह कौतूहल-वश दर्वाजेकी आड़में खड़ा होकर उसे देखने लगा।

चन्द्रा एक कागजका टुकड़ा हाथमें थामे कुछ पढ़ रही थी और छेदीलाल की बहन उसके सामने खड़ी हुई पैरके अंगूठेसे फर्शको कुरेद रही थी। सारी चिट्ठी पढ़नेके बाद वह एकदम घबरासी उठी और अनायास ही उसके मुंहसे निकल पड़ा—"कम्बख्तने यह क्या किया! मरनेसे क्या मिल जायगा?"

यह कहते हुए चन्द्रा उस युवतीका हाथ पकड़े अपने कमरेकी तरफ झपट कर चली गई। कुमार अब भी दर्वाजेकी आड़में खड़ा सब बातें देख रहा था। चन्द्राके मुंहसे निकले हुए शब्दोंको सुनकर उसने अन्दाजा लगा लिया कि बेचारा छेदीलाल चन्द्राकी तरफसे निराश होकर आत्मघात करने पर उतारू हो गया है, अतः ऐसे समय उसे क्या करना उचित होगा? यही सोचनेके लिये पुनः आकर अपनी कुरसी पर बैठ गया; फिर तुरन्त ही वह उठा और बिना नहाये हुए ही कमीज पहन कर नीचे उतर गया। कोठीके पिछले दर्वाजेसे निकल कर चुपचाप उस सकरी पगडण्डी पर से वह नहरकी तरफको चलने लगा। छेदीलालका मकान इसी तरफ कोई एक-सौ गजके फासले पर था। कुमारके मनमें रह २ कर यही भाव उठ रहे थे कि अब हमारे इस छोटे से गांवमें कई प्रकारकी नई और अद्भुत घटनाएं देखनेको मिलेंगी; इसी प्रकार सोचता विचारता हुआ, वह छेदीलालके मकानके पास तक पहुँच गया।

*
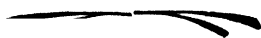
आठवां परिच्छेद

धन-दौलतके प्रलोभनमें फंस कर उसकी प्रेयसीने गांवके जमींदारको अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया, पिछले किये गये वादोंको वह एकदमसे भूल बैठी, अब भला वह काहेको उस जैसी थोड़ी तनख्वाह पानेवाले मुन्शीकी बात भी पूछेगी—इन्हीं सब बातोंसे ऊब कर छेदीलालने आत्मघात कर लिया। उसने सोचा, नित्यप्रतिके झगड़ोंसे बचनेके लिये यही एक अच्छा उपाय है। आशा टूट चुकी थी, मनमें उगा हुआ प्रेमांकुर मुर्झा गया था, फिर उलझनोंको सुलझानेकी उसमें सामर्थ्य ही कहां रह गई थी! विष खाकर सो जानेसे, उसकी अनन्त प्रगाढ़ निद्रामें समस्त दुःख जड़-मूलसे नष्ट हो जायेंगे, एतदर्थ इसी निद्रामें डूबनेके कारण उसने विष-प्रयोग किया था, परन्तु दुर्भाग्यवश वह सफल न हो सका और बीच ही में चन्द्रा आदिने आकर विघ्न डाल दिया। डाक्टर वर्माने वाश-ट्यूब द्वारा पेट साफ करके उसे पुनः बचा लिया और बड़े यत्नसे दवा आदि पिला कर दो ही दिनमें फिर जैसा भला-चंगा कर दिया।

तीसरे दिन छेदीलालने अपना काम संभाल लिया। कुमार और चन्द्राने बड़े कौशलसे इस भेदको किसी पर प्रकट नहीं होने दिया था, इसलिये किसीने उससे पूछताछ भी नहीं की। जब कोई पूछ भी बैठता कि—"दो दिनसे कहां थे?" तो कह देते—"यार बीमार पड़ गये थे।" बस, फिर कोई बात ही नहीं थी—काम पर जाते और शामको चुपचाप

वापस घर आ जाते। अधिक किसीसे बातचीत करना भी छोड़ दिया था—इतने दिनोंके बाद अब छेदीलालको यह तजुर्बा हो गया था कि, लोगोंके आगे अपना दुःख रोनेकी अपेक्षा मन मार कर चुप्पी साध लेना कहीं अधिक लाभदायक और संतोषजनक है। कुमार और डाक्टर वर्माके सद् उपदेशोंने उसके हृदय पर अच्छा प्रभाव किया।

उपरोक्त घटना होनेके चौथे रोज बाद चन्द्राने मौका देखकर छेदीलालको संकेतसे बुलाया। छेदीलालने एकबार दृष्टि घुमाकर उसकी ओर देखा, संकेत भी समझ गया, परन्तु समझ कर भी वह उसके पास नहीं गया। शीघ्रतासे खिसकनेकी उसने चेष्टा की, पर अदृश्य होनेसे पहले ही चन्द्राकी धीमी आवाज कानोंमें पड़ी—'मुन्शीजी!'

अब वह आगे न बढ़ सका—बढ़नेका उसे अधिकार भी नहीं रह गया था। एक प्रेयसीकी आज्ञा टाली जा सकती है, पर मालकिनकी नहीं! चन्द्रा भी तो अब उसकी मालकिन ही थी—आज्ञा टालने पर कौन जाने वह झूठा दोषारोपण करके उसकी जानपर एक नई आपत्ति खड़ी कर दे। इसी ख्यालसे उसने ठहर जाना उचित समझा।

"क्यों छेदीलाल, अब कैसी तबियत है?" पास जाते हुए चन्द्राने पूछा।

"ठीक हूँ"—छेदीलालने उत्तर दिया। केवल इतने उत्तरसे चन्द्रा सन्तुष्ट न हुई, वह कुछ और सुनना चाहती थी, अतः चुप देख कर उसे ही पुनः पूछना पड़ा।

"आज-कल तुम इतना उदास क्यों रहते हो जी?" सुनते ही छेदीलालके मनमें एक टीस सी उठी। उसे लगा, मानों वह जान-बूझ कर उसके व्यथित हृदयको दुखानेकी कोशिश कर रही है—उसने उत्तर दिया—"केवल मनकी गति ही तो है, यह जिस ओरको बहे, हमें भी उसी ओर बहाना पड़ता है। अब और क्या कहूँ! इतने ही से समझ जाओ।"

मन लगती बात न पाकर चन्द्रा चंचल सी हो उठी। आज ये कैसी बहकी २ बातें कर रहा है! छेदीलालकी खिन्नता एवं विरक्तपनेने क्षण भरके लिये उसे स्तब्ध कर दिया, वह यह स्थिर न कर सकी कि, अब उसे क्या कहना चाहिये। यदि शर्मदार होती तो फिर कुछ पूछने का साहस ही नहीं करती, परन्तु उसकी शर्म तो उसी रोज धुल चुकी थी, जिस रोज उसने सोचा था कि, जमींदारके घर जाकर भी वह उसके साथ वैसा ही सम्बन्ध बनाये रहेगी। मनकी बात कह देनेसे बहुत संभव है छेदीलालका भ्रम दूर हो जाये, अतः वह बोली—

"तुम समझते होगे जमींदारके साथ शादी करके मैंने तुम्हारे साथ अन्याय किया—यह बात नहीं है छेदीलाल! ऐसा करके मैंने बुद्धिमत्ताका ही काम किया है। तुमसे कोई बात छिपी हुई नहीं है, पहले मेरे भाई और बापकी कैसी दीन अवस्था थी, कभी-कभी तो उपवास ही करना पड़ता था। उन्हींकी दरिद्रता दूर करनेके लिये मुझे स्वयको बिकवा देना पड़ा—तुम ही सोचो, तुम्हारी दशा भी कोई संतोषजनक नहीं है। जमींदारके साथ मेरा सम्बन्ध हो जानेसे तुम्हें निराश नहीं हो जाना चाहिये। इससे हमारे तुम्हारे प्रेममें तो किसी प्रकारकी बाधा

नहीं पहुँच सकती। सम्बन्ध और भी अब निकटका हो गया है—पहले कुछ दूर भी थी, पर अब तो सारे दिन पास ही रहती हूँ। जब जिस चीजकी जरूरत पड़े, मुझसे मांग सकते हो, रुपया पैसा जो चाहो ले सकते हो।"

छेदीलाल यद्यपि उसका अथवा उसके स्वामीका नौकर ही था, परन्तु चन्द्राके अन्तिम शब्द सुनते ही उसके तन बदनमें आग लग गई; घृणाकी दृष्टिसे उसकी ओर देखता हुआ बोला—"माफ कीजियेगा, मुझे न तो आपके स्नेहकी जरूरत है और न फालतू रुपये पैसेकी। दिन भर जो परिश्रम करता हूँ केवल उसकी मजूरी ही मिल जाये उसीमें मुझे सन्तोष है—आपके भाई और बापको रुपयोंकी अधिक जरूरत रहती है, उन्हींकी जी भर कर सहायता कीजिये—बड़ा पुण्य होगा आपको।"

बात चन्द्राको कुछ अरुचिकर सी लगी। बाप भाईको पैसे देकर यदि वह उनकी सहायता करती भी है तो उससे इसे डाह क्यों? और फिर उन्हें ही नहीं वह तो इसे भी भरसक सहायता पहुँचानेको हर समय तैयार है। मूर्ख बनकर जब यही इस शुभ अवसरसे लाभ नहीं उठाना चाहता तो इसमें उसका क्या दोष? सफाई दिखाते हुए चन्द्राने कहा—

"तुम समझते होगे छेदीलाल, कि मैंने तुम्हारे साथ विश्वासघात किया, वचन देकर भी अपने वचनोंका पालन नहीं किया और इसी प्रकारसे तुम्हें धोखा दे रही हूँ सो बात नहीं है। मैं तुमसे पहले भी प्रेम करती थी और अब भी कर रही हूँ। जमींदारसे शादी हो जानेका अभिप्राय यह नहीं समझना चाहिये कि इससे मैं तुम्हारे पुराने प्यारको

भी भूल जाऊंगी। यह तो केवल मैंने तुम्हारी और अपनी दशा सुधारने के लिये ही ऐसा किया है अन्यथा तुम्हारे प्रेमकी छाप तो सबसे पहले ही इस हृदय पर पड़ चुकी है।"

"धिक् है ऐसे प्रेम पर और बज्र गिरे ऐसा प्यार करनेवाले पर" छेदीलालकी भृकुटी तन गई, वह जोशमें कहता ही चला गया—"वह प्रेम, प्रेम नहीं कहा जा सकता जिसमें स्वार्थ और काम-लोलुपता कूट-कूट कर भरी हो—वह प्यार, प्यार नहीं होता जो केवल एक ही के लिये नहीं वरन् जिसे देखा उसीके लिये रख छोड़ा जाय।"

"यह क्या कह रहे हो छेदीलाल ? मैंने तुम्हारे सिवा और किससे प्रेम किया ?"

"झूठ न बोलो, मुझसे कुछ भी छिपा नहीं है" —छेदीलालने उसी झोंकमें उत्तर दिया—"तुम्हारा प्रेम एक मधुमक्खीसे कम नहीं, जब तक फूलमें रस रहा बैठी हुई चूसती रही और रस खतम होने पर तुरन्त उड़ गई—तुम एक तितलीसे किसी प्रकार कम नहीं हो, कभी यहां कभी वहां। यही है न उसका और तुम्हारा स्वभाव ? अन्तर ही क्या है। वह है तितली और तुम हो चन्द्रकली—चन्द्रमाकी आभा देखनेवालों की आंखें जैसे शीतल करती है वैसे ही तुम्हारी कृपा-दृष्टि भी लोगोंके मनमें शान्ति पैदा कर देती है। प्रेमके सच्चे उपासकके आगे धन और सम्पत्ति, यहां तक कि विश्व भरकी निधियां हेच हैं।"

"ओह छेदीलाल, मुझे पहले यह नहीं मालूम था कि, तुम ऐसे ख्यालके आदमी हो।"

'हां, मुझे पहचाननेमें तुम्हें वास्तवमें भूल हुई और भूल भी ऐसी

कि जिसका सुधार होना इस जन्ममें तो एक प्रकारसे असंभव ही है। भूल सुधार होनेकी अब जरूरत ही क्या है? तुम बड़े आनन्दसे रह रही हो, कोई कष्ट नहीं है, सभी तुम्हारी आज्ञा मानते हैं।"

"आह! इन सब बातोंमें वह आनन्द कहां है छेदीलाल?"

"तो फिर क्या वह आनन्द तुम्हें तितली अथवा मधुमक्खी बनने ही में मिलता है?"

"चुप रहो, मुझे ये बातें अच्छी नहीं लगतीं। मुझे बदनाम करना चाहते हो, तुम्हारे या जमींदारके सिवा और किसीसे भी मेरा ऐसा सम्बन्ध हुआ है क्या?"

"फिर झूठ बोलनेकी कोशिश कर रही हो चन्द्रा! क्या कुमारके आगे तुमने प्रेम-भिक्षाके लिये हाथ नहीं पसारा? उसके इन्कार कर देने पर क्या तुमने उससे बदला लेनेका निश्चय अपने दिलमें नहीं किया? यह तितली-वृत्ति नहीं तो और क्या है?"

छेदीलालके मुखसे कुमारका नाम सुनकर मानों उसे काठ मार गया, उसे स्वप्नमें भी यह आशा नहीं थी कि कुमारकी बात छेदीलालके कानों तक पहुँच जायगी। वह सोचने लगी इसे कैसे मालूम हुआ? कहीं कुमारने तो सारी बातें नहीं बता दीं, परन्तु वह तो ऐसा है नहीं, उसने किसीको भी मेरी वह बात न कहनेका वादा किया था—वादा करके उसे भुलाना तो वह जानता ही नहीं, फिर इससे किसने कहा? समझमें नहीं आता।

उसे चुप देखकर छेदीलाल ही बोला—"यह न समझना कि मुझसे कुमारने ये बातें बताई होंगी—मैं सच कह रहा हूँ उसने एक भी बात

मुझसे इस विषयकी नहीं कही, मुझे विश्वास है तुमने शायद न कहनेका उससे वादा भी करा लिया होगा—मैं केवल…"

"जब उसने तुमसे ये बातें नहीं कहीं तो क्या फिर वायरलेस द्वारा तुम्हें यह खबर मिली ?"

"किसी पर झूठा दोषारोपण करना ठीक नहीं। यह उसी दिनकी बात है, जिस दिन विष खाकर मैंने आत्म हत्या करनेकी ठानी थी—मैंने स्वयं छिप कर सारी बातें अपने कानों से सुनी और सच पूछो तो तुम्हारी उस बेश्या-वृत्तिसे ऊब कर ही मैंने वैसा करनेका विचार किया था।"

"ओह तुम बड़े चालाक हो। मुझे क्षमा करो छेदीलाल—अज्ञानतावश मुझसे वह अपराध हो गया था। तुम्हें मेरी बातोंका विश्वास नहीं होता, मैं सच कहती हूँ, शुरूसे ही मैं तुम्हें चाहती हूँ, यहां भी मैं तुम्हारे ही कारणसे आई हूँ। जमींदारसे शादी कर लेनेमें मैंने यही सोचा था कि एक तो हमारी दरिद्रता दूर हो जायगी, दूसरे तुम्हारे साथ मिलने-जुलनेमें किसी प्रकारकी बाधा न रहेगी—तुम्हीं बताओ मैंने ऐसा करके बुरा ही क्या किया ?"

"कुछ भी नहीं"—विरक्त भावसे छेदीलालने उत्तर दिया।

"फिर क्यों नहीं तुम मेरी बातें स्वीकार करते ?" उसने पूछा।

'ऐसा करनेकी मुझमें शक्ति नहीं है।" उसने कहा और तुरन्त पलटकर वहांसे चलता बना। चन्द्रा उसके भाव-भंगीको देखकर आवाक रह गई—कुछ कर तो सकी न, केवल इतना ही बुदबुदा कर वह अपने कमरेमें चली गई—"अच्छा समझूंगी।"

नवां परिच्छेद

शामके साढ़े तीन बजेका समय होगा। दून एलेक्ट्रिक कम्पनीके कर्मचारी धीरे-धीरे अपना काम खतम करके दफ्तर बंद होनेका इन्तजार कर रहे हैं ! ठीक चार बजे छुट्टीका घण्टा बजा और सब अपने २ घरों को जाने लगे। देखते २ इतनी बड़ी कम्पनीकी विशाल बिल्डिग एकदमसे खाली हो गई, चपरासियोंने चारों ओरके दर्वाजे बन्द करके उनमें ताला ठोंक दिये। अब इस समय केवल मैनेजर साहबका कमरा ही खुला हुआ था, जिसमें रामूबाबू और उनके अतिरिक्त तीसरा कोई नहीं था। वे दोनों धीरे धीरे कोई गुप्त परामर्श कर रहे हैं, इसीलिये किसीको उस कमरेके बाहर भी ठहरनेकी आज्ञा नहीं है। किसी बातका उत्तर देते हुए मैनेजर साहब बोले—

"तो रामूबाबू इससे यह मालूम हुआ कि, तुम्हारी अभी तक उससे मुलाकात ही नहीं हुई !"

"मैं यह कब कहता हूँ कि वह मुझसे मिली ही नहीं"—रामूबाबूने उत्तर देते हुए कहा—"मेरे कहनेका मतलब तो यह है कि वह मुझसे मिली भी और बातचीत भी की, जो बात आप चाहते हैं उसके लिये भी वह राजी है, बशर्ते कि आप पहले तीस हजारका बौंड उसके नाम..."

"तीस हजारका बौंड ! बापरे एकदमसे तीस हजारका बौंड उसके

नाम लिख दूं ?" वे कहते ही चले गये—"नहीं रामूबाबू, यह तो कभी नहीं हो सकता। यह माना कि मिस जिंजर एक खूबसूरत और मनको बरबस मोह लेनेवाली लड़की है, पर इससे क्या मैं अपनी तमाम आय उसीके नाम करा दूं ? करा भी दूं तो फिर मेरी इकलौटी बेटी रंभाके लिये क्या रह जायगा।"

"यह आप खुद सोच लें ? बड़े आदमियोंका कहना है कि टांगे उतनी पसारनी चाहिये, जितनी बड़ी चादर हो—मेरे ख्यालसे तो आप व्यर्थ ही उस विलायती चिड़ियाके पीछे हाथ धोकर पड़े हुए हैं।"

"नहीं रामूबाबू, मैं उसके पीछे व्यर्थ ही नहीं लगा हूँ—जब तक अपने अपमानका बदला उससे नहीं ले लूंगा, तबतक मुझे चैन नहीं आ सकता। ओफ, उस दिन क्लबमें अपने अंगरेज प्रेमीके सामने उसने किस बुरी तरहसे मेरा अपमान किया था—वह बात कभी भूलनेवाली है क्या ?"

"मिस जिंजरका कोई प्रेमी भी है क्या ?" रामूबाबूने आश्चर्यसे पूछा।

"हां, वे दोनों ही साथ २ विलायतसे यहां आये थे, वहींसे उन दोनोंमें परस्पर प्रेम है।"

"तभी वह सीधे मुंह किसीसे बात नहीं करती—सच पूछिये तो ये गोरी चमड़ीवाले हम भारतवासियोंको कुछ समझते ही नहीं, प्रत्युत घृणा की दृष्टिसे देखते हैं। अवश्य ये लोग दण्ड पाने योग्य हैं। मैं यथा-शक्ति इसमें आपकी सहायता करनेको तैयार हूँ—परन्तु..."

"परन्तु क्या रामूबाबू ? कहते कहते चुप क्यों हो गये ?" उन्होंने पूछा।

"वह कुछ ऐसी ही बात है इसलिये कहते हुए कुछ संकोच सा होता है।" उसने कहा।

"मुझसे संकोच करनेकी भला क्या जरूरत है ; कह डालो जो कुछ कहना हो।"

"बात यह है साहब, मैं भी एक लड़कीसे प्रेम करता हूँ और चाहता हूँ कि जैसे भी हो उसके साथ मेरी शादी हो जाय मगर कोई जरिया ही नहीं सूझ पड़ता, इसलिये हैरान हूँ कि क्या करूं ?"

"घबरानेकी क्या बात है। जब तुम मेरे दुःख-सुखमें काम आते हो तो मैं भी भरसक तुम्हारी सहायता करनेको तैयार हूँ—कौन है ? कहां रहती हैं वह लड़की ?"

उसके और कोई नहीं है केवल एक बड़ा भाई ही है। वह हमारे जमींदारके यहां मुंशीका काम करता है ? वह लड़की भीं मुझसे प्रेम करती है, मगर बिना अपने भाईकी आज्ञाके वह कुछ नहीं करना चाहती, इसीलिये मेरे काममें यह रुकावट पड़ रही है।"

"ओ यह भी कोई कठिन काम है, केवल एक बार जमींदार साहब से कहने भी की देर है।"

"ना ना यही तो मैं नहीं चाहता, नहीं तो अब तक कभीका मेरा काम पूरा हो गया होता।"

"क्यों इसमें हर्ज ही क्या है ?" मैनेजर साहबने पूछा—

"इसमें भी एक भारी रहस्य छिपा है, जिसे मैं बताना नहीं चाहता, उसे बतानेमें मुझे शर्म मालूम होती है"—कहते हुए रामूबाबू सिर झुका लिया और किसी सोचमें डूबने उतराने लगे।

"ऐसा वह कौन-सा रहस्य है भाई! जिसे बतानेमें तुम्हें मुझसे भी संकोच हो रहा है।"

"लीजिये मैं आपसे खुलासा कह देता हूँ—बात यह है कि हमारी मां तो जब हम छोटे थे तभी मर गयी थी। घरपर मैं मेरी बहन तथा पिताजी ही रहा करते थे। बड़ा होनेपर मैं तो अपने स्कूल चला जाता और पिताजी अपने काम धन्धेमें फंसे रहनेके कारण प्रायः सारा दिन घरसे बाहर ही रहा करते थे—घरपर बहन ही अकेली रह जाती थी। मुन्शी छेदीलाल हमारे घर शुरूसे ही आया जाया करता था, उनके आने जानेमें कोई रुकावट भी नहीं थी, क्योंकि एक जमींदार साहबका मुंह चढ़ा मुन्शी होनेके कारण यों ही सब उनसे डरा करते थे, दूसरे कभी २ जरूरत पड़नेपर पांच सात रुपये देकर वह पिताजीकी सहायता भी कर दिया करता था, इसीलिये हम सब लोग उसे आदरकी दृष्टिसे देखने देखने लगे थे। परिणाम स्वरूप मेरी बहन और छेदीलालमें खूब प्रेम बढ़ गया और वे दोनों एक दूसरेको बुरी तरहसे चाहने लगे। यही एक अड़चन है जिसके कारण मैं उससे अपने मनकी बात कहनेमें संकोच कर रहा हूँ!"

"ओ, तब तो यों कहिये कि पहले उसने आपकी बहनको प्रेम करके फसाना चाहा था और अब आप उसकी बहनसे प्रेम करके उसे हस्तगत करनेकी कोशिश कर रहे हैं—क्यों?"

"नहीं नहीं यह बात नहीं है। मैं ऐसा करके उससे बदला लेना नहीं चाहता—हम दोनों बहुत मुद्दतसे एक दूसरेको चाहते हैं"—रामूबाबूने झेपते हुए उत्तर दिया।

"हूँ—अच्छा कुछ भी हो मैं तुम्हारा यह काम करा दूंगा तुम चिंता न करो।" मैनेजर साहबने कहा—

"परन्तु यह भेद जमींदार साहबको मालूम न हो, नहीं तो बदनामी होगी और फिर ऐसा होनेपर मेरी बहनकी दुर्गति होने लगेगी।" रामूनेबाबू गिड़गिड़ाते हुए कहा।

"निश्चिन्त रहो, यह भेद किसी पर भी प्रकट नहीं हो सकेगा। परन्तु साथ ही यह शर्त है कि मेरा काम होना भी बहुत जरूरी है, वरना मैं इस मामलेमें कुछ न कर सकूंगा।"

"उसके लिये मैं जी जानसे तैयार हूँ"—रामूबाबूने प्रसन्न मुखसे उत्तर दिया।

"अच्छा चलो अब चलें, फिर कल जो होगा देखा जायगा।" इसके बाद दोनों उठकर कमरेसे बाहर आये। चपरासीने दफ्तरके दर्वाजे में ताला लगाकर ताली रामूबाबूके हवाले कर दी। सड़कपर आकर रामूबाबूने अपनी साइकिल संभाली और चढ़कर चल दिया। मैनेजर साहब भी मंद-गतिसे टहलते हुए अपनी कोठीकी तरफ चल दिये।

कम्पनीके सदर गेटके बाहर न जाने कबसे एक नवयुवक नये २ वस्त्रोंसे सुसज्जित बैठा हुआ इन्हींका इन्तजार कर रहा था। गेटसे बाहर निकलते ही उसने इन्हें पहचाननेकी कोशिश की और जब भली प्रकार पहचान लिया तो कुछ बोला नहीं प्रत्युत चुपचाप इनके पीछे २ चल दिया। एक मोड़ मुड़नेके बाद कुछ ही फासलेपर उनकी कोठी थी। कोठी यद्यपि छोटी और साधारण-सी थी तथापि खूब सजी हुई थी।

चहारदीवारीके भीतर एक छोटा-सा बगीचा था जिसमें भांति भांतिके पुष्प और लतायें फैली हुई थीं।

मैनेजर साहब तो अपनी कोठीमें घुस गये परन्तु वह युवक बेचारा दर्वाजेके बाहर ही खड़ा रहा। न जाने उसका क्या अभिप्राय था, मालूम नहीं वह क्या सोच रहा था—कुछ भी हो वह चुप था, और इसी चुप्पीमें वह अपना कुछ मतलब गांठना चाहता था। कोई बीस बाइस मिनटके बाद मैनेजर साहब पुनः कोठीसे बाहर निकले; इस बार उनके हाथमें टेनिस खेलनेका रैकिट था—सम्भवतः वे अब क्लब जारहे होंगे। उनके चले जानेपर भी युवक बाहर ही खड़ा रहा।

कुछ समय बाद ही कोठीके भीतरसे आवाज आई—"अरे माली, यह नर्गिसका पौदा तुमने यहां लगा दिया और कहा था तुमसे वहां लगानेको। सारा दिन यों ही फालतू बैठे रहते हो" आवाज किसी लड़कीकी थी और उस युवककी परिचित-सी जान पड़ती थी क्योंकि आवाज सुनते ही वह जान बूझकर दर्वाजेके सामने आकर खड़ा हो गया था। उत्तरमें उसका कारण बताकर मालीने लड़कीको सन्तुष्ट कर दिया।

अब वह लड़की भी घूमती हुई दर्वाजेके पास तक आ चुकी थी। सामने वह युवक खड़ा था—दृष्टि पड़ते ही वह उसे पहचान गई और उसके पास आती हुई बोली—"हरपाल, मेरी आज्ञानुसार आखिर तुम यहां पहुँच ही गये। यह तुमने अच्छा ही किया। तुम्हारा सामान वगैरः कहां है?

हरपालकी बगलमें एक छोटा-सा बिस्तरा था, जिसमें एक दरी, एक

चादर और एक तकिया ही थी—उसीको दिखाते हुए बोला—'बस यही सामान मैं अपने साथ लाया हूँ।"

"बहुत काफी है तुम्हारे लिये"—कहते हुए वह हंस पड़ी। सारा सामान नया देखकर ही शायद वह हंस पड़ी थी—वह समझ गई थी कि चुराये हुए मनीबेगकी यह कृपा है। और कुछ न कह कर उसने उसे कोठीके भीतर आनेका संकेत किया और साथ लिये हुए एक कमरे में पहुँची। बिस्तरा आदि रखवा कर कुछ चाय और मिठाई खानेको उसे दी।

जब हरपाल खा पी चुका तो उसीके पास बैठकर रंभा उससे बातें करने लगी—"हां, हरपाल अब बताओ तुम मथुरामें कितने दिनोंसे रहते हो? तुम्हारे और कौन २ हैं?"

हरपाल बोला—"मैं मथुरामें ही पैदा हुआ हूँ और तबसे मेरी मां और मैं दोनों ही वहां रहते हैं। हम दोनोंके अतिरिक्त और कोई भी हमारा सम्बन्धी नहीं है।"

रंभाने पूछा—"तुम्हारे पिता कौन थे? वे क्या काम किया करते थे?"

उनके बारेमें मैं कुछ नहीं बता सकता। लोगोंका कहना है जिस समय मेरी मां मथुरामें आई थी, उस समय उनके साथ एक और बाबू-साहब भी थे—शायद वे ही मेरे बाप रहे होंगे, परन्तु मैं उन्हें अपना बाप माननेको तैयार नहीं हूँ, क्योंकि वे मेरी मां को अकेली ही छोड़कर अनायास ही एक दिन वहांसे गायब हो गए, और फिर ऐसी अवस्थामें जब कि मैं अपनी मां के गर्भमें था—ओफ! कितने निर्दयी थे वे? कैसा

हृदय था उनका ! यदि सौभाग्यसे मेरी मां के आभूषण न होते तो प्रसूति-कालमें उनका या मेरा क्या परिणाम होता। निश्चय ही हम दोनोंका इस संसारसे प्रस्थान हो जाता।"

कहते २ हरपालके नेत्रोंमें आंसू आगये, रंभाके नेत्र भी सजल हो आये, परन्तु उसने जी कड़ा करके उसे समझा बुझा कर शान्त कर दिया। फिर उसने धीरेसे न जाने क्या उसे कहा, जिसे सुन कर हरपालने आश्चर्यान्वित हो उससे पूछा—"क्या आज ही मथुरा वापस चला जाऊं ?"

"हां लो यह बीस रुपये ; आज ही तुम मथुरा वापस चले जाओ।" रुपये देकर रंभाने तुरन्त ही हरपालको वहांसे विदा कर दिया। एक रात भी तो ठहरनेकी उसे आज्ञा नहीं मिली।

दसवां परिच्छेद

"एजी ! सुनते हो मैं क्या कह रही हूँ"—चन्द्राने जमींदार साहबके बालोंमें अंगुली फेरते हुए कहा ।

"उंह, मुझे छेड़ो नहीं—बड़े जोरकी नींद आरही है ।" करवट बदलते हुए उन्होंने उत्तर दिया ।

"छेड़ो नहीं, मुझे नींद आरही है । हूँ—तुम्हारी नीद तो उस समय टूटेगी जब आंखों देखते तुम्हारे घर डाका पड़ जायगा, आंखें तो तुम्हारी जब खुलेंगी जब घरका आदमी ही तुम्हारी इज्जत पर हाथ साफ कर जायगा । ऐसे ही लोगोंको तो बादमें सिर पकड़ कर रोना पड़ता है ।"

"अरे कौन है वह ऐसा जो मेरे घरमें डाका डाल जाये, किसके मुंह में इतने दांत जमे हैं जो मेरी इज्जत पर हाथ साफ कर जायें"—जमींदार साहब बिगड़ते हुए पलंग पर उठ बैठे ।

"और कौन होगा, वही आपके दीवानजीके कुंवर साहबके सिवा । तुमने उसे इतना मुंह चढ़ा रक्खा है कि मेरी बातकी पर्वाह ही नहीं करता । ऐसे ही तुमने पुष्पाको बिगाड़ रक्खा है, लाख-मना करो बिना उससे मिले बाज नहीं आती । यह भी कोई बहू बेटियोंके कायदे हैं ।"

"अरे तुम तो व्यर्थमें उन दोनों पर बिगड़ती हो । पुष्पा इस घर की बेटी है कोई बहू तो नहीं—बचपनसे वे दोनों एक साथ पढ़े हैं,

खेले हैं फिर एक ही साथ रहते आये हैं तिस पर कुमारकी मां ने ही पुष्पाको पाल-पोष कर इतना बड़ा किया है इसी लिये उन दोनोंमें इतना प्रेम है। उनके परस्पर मिलने जुलनेमें हर्ज ही क्या है ?''

"हूँ, हर्ज ही क्या है। अच्छा साहब, कुछ भी हर्ज नहीं है—मैं उसकी मां लगती थी इस लिये इतनी बात कह दी नहीं तो मुझे क्या जरूरत पड़ी थी जो व्यर्थ माथा-पच्ची करती।"

"ओह, तुमतो जरासी बात पर भी नाराज हो जाती हो।" खुशामद करते हुए उन्होंने उसकी झुकी हुई ठोडी ऊपर उठा ली और बोले—"मुझसे नाराज न हुआ करो मेरी रानी।"

"फिर मेरी बात क्यों नहीं माना करते ?" तिरछी चितवनोंसे बिजली गिराती हुई वह बोली।

"क्या बात नहीं मानता मैं तुम्हारी ? खामखा लड़नेको बैठ जाती हो।"

"कहती तो हूँ पुष्पा और कुमारका परस्पर मिलना-जुलना बिल्कुल बन्द कर दो। अब वे लोग पहले जैसे नहीं रह गये हैं, दोनों ही चढ़ती जवानी पर हैं—आग और फूंसका एक जगह करना कोई बुद्धिमत्ता तो है नहीं। अब उनके शैशवका वह स्नेह प्रगाढ़ प्रेममें बदलता जारहा है, यदि कुछ दिनों और यही दशा रही तो स्थिति बड़ी नाजुक हो जायगी—दोनों कुछ ऊंच-नीच कर बैठे तो याद रक्खो नाक कट जायगी नाक !"

"ठीक कह रही हो। इन दोनोंको अलग २ रखना ही अब ठीक होगा"—जमींदारने क्षण-भर तक सोचनेके बाद पुनः कहना आरम्भ किया—"बहादुरपुरकी प्रजा आजकल बहुत बिगड़ी हुई है, वहांके

किसानोंने बड़ा ऊधम मचा रक्खा है उन्हींको दबानेके लिये मैं कल दीवानजीको भेजनेवाला था, परन्तु उन्हें न भेजकर अब मैं कुमार सिंह को ही वहां की हालत ठीक करनेके लिये भेजूंगा—क्यों है न ठीक?"

चन्द्रा बोली—"हां, है तो ठीक युक्ति, पर उसकी मां और दीवानजी राजी हो जायें तभी तो ना? दीवानजी भी राजी हो जायेंगे परन्तु शायद उसकी मां राजी न हो।"

"एंह, वह भला क्यों नहीं राजी होगी।" जमींदार साहबने लापरवाहीसे उत्तर देते हुए कहा—"जैसा मैं कह दूंगा वैसा ही उन लोगोंको मानना पड़ेगा।"

"हां, आप तो सबके अन्नदाता हैं ना।" मुस्कराते हुए चन्द्राने कहा।"

"इसमें शक ही क्या है!" कहते हुए जमींदार साहबने उसे अपनी भुजाओंमें जकड़ लिया और क्षण-मात्रमें ही अगणित दन्त-चिन्ह उसके कपोलों पर अंकित कर दिये और दूसरे क्षण ही वे दोनों लिहाफमें लिपटे हुए पलंग पर पड़े थे····

नहीं मालूम उनकी रात आनन्दसे गुजरी अथवा लड़ाई झगड़े में ही।

× × × ×

दूसरे दिन प्रातःकाल ही जमींदार साहबने नहा धो आवश्यक कार्यों से निवृत हो दीवानजीको बुलाया और कुछ इधर उधरकी बातें करके बहादुरपुरवाला मामला सामने किया। वहां की दशा वास्तवमें बहुत

बिगड़ी हुई थी—उस साल वर्षा अधिक न होनेके कारण किसानोंकी तरफ लगान काफी चढ़ गया था—वे लोग देनेमें ही न आते थे—देते भी कहां से ? खेती तो बिलकुल हुई ही नहीं थी, फिर बेचारोंका दोष ही क्या था ? लगान वसूल न होने पर कारिन्दे उन्हें मारते पीटते और गालियां देते थे। उनकी सख्ती जब चरम-सीमाको पहुँच गई तो वहां के किसान भी बिगड़ उठे। आखिर जुल्मकी भी कोई हद होती है।

उन्हीं भड़के हुए किसानोंको दबानेके लिये पहले वे दीवानजीको भेजना चाहते थे, परन्तु अब चन्द्राकी आज्ञानुसार उन्होंने कुमारको ही भेजनेका निश्चय कर लिया। कुमार भी चूंकि एफ० ए० फाइनलकी परीक्षामें उत्तीर्ण होनेके बादसे घर पर ही रह कर दीवानजीके कामोंमें हाथ बंटाने लगा था इस लिये उसका अनुभव बढ़ानेके लिये वे उसे और भी वहां भेजनेके इच्छुक थे। उसी बातको उठाते हुए जमींदार साहब बोले—

"क्यों दीवानजी, आपने बहादुरपुरके किसानोंको दबानेके लिये क्या विचारा है ?"

"आपकी आज्ञानुसार आज मैं स्वयं ही वहां पहुँचनेकी कोशिश करूंगा।" उन्होंने उत्तर दिया।

"आपके जानेकी क्या जरूरत है दीवानजी—जमींदार साहबने कहना आरम्भ किया—"बहादुरपुरके किसानोंको दबानेके लिये आपका कुमार सिंह ही काफी होगा। वह अब कोई बच्चा तो है ही नहीं जो किसी बातका डर हो, क्यों आपकी क्या राय है ?"

"कुमार सिंहके वशका अभी यह काम नहीं है सरकार ! कौन जाने

वहांके भड़के हुए किसान कोई ऐसा उत्पात मचा दें, जिसे संभालना उसके लिये एकान्त रूपसे असम्भव हो जाय। तब क्या होगा ? ऐसी दशामें मामला और बिगड़ जानेकी संभावना है।"

"ओ, यह कुछ नहीं होगा— कुमार भी अब ऐसा अनजान नहीं रह गया है। वह समझ-बूझ कर सब काम स्वयं ही संभाल लेगा, मुझे उस पर पूरा २ भरोसा है। और फिर यदि ऐसी २ उलझनों और झगड़ोंको सुलझानेकी भी उसमें योग्यता न होगी तो फिर वह बाद में आपका काम ही कैसे संभाल सकेगा। जमींदारों की तो प्रायः ऐसे ही झगड़ोंमें जिन्दगी बीतती है।"

जैसा आप उचित समझें करें। मुझे उसे भेज देनेमें भी कोई एतराज नहीं है। केवल उसी एक बातकी मुझे आशंका थी, जो मैं स्पष्ट रूपसे आपको कह चुका हूँ।"

"बस आशंका करनेकी इसमें तनिक भी गुंजायश नहीं है। आप कुमारको सारी बातें समझा कर आज ही उसे बहादुरपुर भेज देनेका प्रबन्ध कर दें। अधिक विलम्ब करनेसे फिर वहांके किसानों पर काबू पाना कठिन ही नहीं, वरन् असम्भव सा हो जायगा।"

दीवानजीको अपना अन्तिम निर्णय सुनाकर जमींदार साहब वहांसे उठ कर अपने कमरेकी ओर चले गये। दीवानजी भी कुछ खिन्न भावसे उठे और सोचते विचारते हुए दूसरी तरफको चले गये। वे कुमारको अभी अकेले वहां नहीं भेजना चाहते थे।

क्योंकि वे जानते थे कि ऐसे मामलोंमें कभी २ जानें तक भी चली जाती हैं। भड़की हुई प्रजा पर काबू पाना किसी भी साधारण व्यक्ति

का काम नहीं होता। और फिर वे जमींदार-साहबके कठोर स्वभावसे भली भांति परिचित थे, ऐसे ही स्वभावके उन्होंने अपने कारिन्दे रख छोड़े थे, यही कारण था जिससे वाध्य होकर बहादुरपुरकी प्रजाने एकदम से बगावत कर देने पर कमर कस ली थी। समस्या वास्तवमें बड़ी विकट थी—एक ओर जमींदारकी कड़ी आज्ञा और दूसरी ओर था पुत्र-स्नेह। बेचारे करते तो क्या करते? अजब हैरान थे।

अपने कमरेमें पहुँच कर उन्होंने सारीबातें सावित्रीसे कहीं। सावित्री के कानोंमें यह बात पड़ते ही उसके नेत्रोंसे अश्रुधारा बहने लगी, पुत्र-ममतासे प्रेरित होकर उसने कुमारको वहां भेजने से साफ इन्कार कर दिया। परन्तु उसके मना करनेका मूल्य ही कितना था—जमींदारकी आज्ञाको टालना दीवानजीके वश की बात नहीं थी और दीवानजीकी बातको रद्द करनेकी शक्ति सावित्रीमें नहीं थी। अतः कुमार बेचारेके जानेकी बात ही पक्की रही। सावित्रीने बुलाकर सारी बातें कुमारको भी समझा दीं। और बहुत शीघ्र ही उसे वापस बुलानेका वादा करके उसके मन की तसल्ली भी कर दी—इसके सिवा और होता भी क्या?

कुमारके जानेका सारा सामान तैयार हो चुका था, वह सबसे मिल-मिला भी चुका था—केवल पुष्पासे विदा लेनी ही शेष रह गई थी, उसीसे मिलनेके लिये वह छटपटा रहा था, वह भी इससे मिलना चाह रही थी, परन्तु चन्द्राने उन्हें इतना भी तो अवसर नहीं लगने दिया जो एक दूसरेसे अन्तिम बार मिल ही लेते। सावित्री उनके मनकी बात समझ रही थी, अत: उसीने कोशिश करके एकबार चन्द्राको वहांसे टाल दिया और वे दोनों परस्पर मिल लिये।

मिलते समय पुष्पा फूट-फूट कर रो पड़ी। कुमारकी भी यही दशा थी, परन्तु वह फिर भी जी कड़ा करके उसे समझाने का प्रयत्न कर रहा था। पुष्पाके मनका बांध टूट चुका था, वह कह रही थी—"मुझे क्या समझा रहे हो कुमार! तुम्हारे जानेके बाद मेरा दुःख यहां कौन सुनेगा? न जाने किस जन्म की बैरिन ये चन्द्रा मेरी सौतेली मां बनकर इस घरमें आगई है—ओह! पहलेसे मालूम होता तो इसके आते ही फांसी लगा कर अपनी हत्या कर लेती। यहां तुम्हीं एक ऐसे थे जो मेरे दुःख-सुखमें हाथ बंटाते थे—अब तुम्हारे पीछे मेरी कौन सुना करेगा? यह डायन तांस २ कर रोज मेरा जी जलाया करेगी। अच्छा जाओ कुमार! वहां सावधानीसे रहना, परन्तु वापस आने पर अब तुम मुझे जीवित न देख सकोगे।"

"नहीं पुष्पा, कहीं ऐसा न कर बैठना तुम्हें मेरी कसम है। नहीं तो मैं भी आत्म-हत्या कर बैठूंगा।" कहते हुए कुमारने उसको हृदय से चिपका लिया और आज पहली बार उसके रक्तवर्ण कपोलोंका चुम्बन करते हुए उसने कहा—"वादा करो अच्छा, ऐसा तो नहीं करोगी।"

बाहुपाशमें जकड़े हुए ही उसने उत्तर दिया—"तुम्हारी इच्छाके विरुद्ध मैं ऐसा नहीं करूंगी।" इतनेमें सावित्रीकी आवाज आई—"चलो कुमार, गाड़ी तैयार है।" दोनों पृथक हो गये और दूसरे क्षण कुमार गाड़ीमें बैठा हुआ बहादुरपुरकी ओर जा रहा था।

ग्यारहवां परिच्छेद
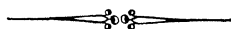
रातके नौ बजेका समय होगा। राजपुर-देहरादून रोडपर एक नीले रङ्गकी नई कार अपनी पूरी चालमे राजपुरकी ओर भागती हुई चली जा रही है। उसीमें बैठे हुए तीनों व्यक्ति कोई और नहीं, बल्कि जमींदार साहब, मैनेजर साहब और रामूबाबू ही हैं जो बड़ी बेखबरीसे बैठे हुए निर्धारित स्थानपर पहुँचनेकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। तीनोंके चेहरोंपर इस समय पृथक २ कुछ अजीबसे भाव झलक रहे हैं। यद्यपि वे लोग चुप अवश्य हैं, पर मनमें प्रत्येकके एक तूफान-सा मचा हुआ है। सबसे अधिक घबराहट मैनेजर साहबके चेहरेसे ही प्रकट हो रही है—शेष दोनों व्यक्ति तो योंही साधारणतया चंचलसे हो रहे हैं।

दस बारह मिनट तक बराबर उसी चालसे चलती हुई कारकी चाल कुछ कम हो गई। अब तक वे लोग देहरादूनसे कोई चार साढ़े चार मीलके फासलेपर आ चुके थे। सड़कके दोनों ओर दूर दूर तक लम्बे चौड़े खेत फैले हुए हैं, मकान आदिका कहीं कोई चिन्ह भी नहीं है—हां, सड़कसे दूर कुछ फासलेपर एक छोटी-सी कोठीकी झलक दिखाई दे रही है, जिसके पास तक पहुँचनेके लिये एक कच्ची सड़क बनी हुई है। उसी परसे होती हुई कार उछलती कूदती उस कोठीकी ओर बढ़ने लगी। कोठीके सामने जाकर कार खड़ी हो गई और उसमेंसे उतर कर तीनों व्यक्ति कोठीमें चले गये।

कोठीकी दशा देखनेसे साफ प्रकट होता था कि यह बहुत दिनोंसे

काममें नहीं लाई गई है, क्योंकि दीवारोंपर यद्यपि सफेदी की हुई थी, परन्तु वह बहुत दिनोंकी की गई मालूम होती थी। कहीं २ पानीकी सीलनसे टेढ़ी-मेड़ी लकीरें और बड़े छोटे कई प्रकारके धब्बे पड़े हुए थे। मकड़ीके जाले आदिका कहीं नाम न था, क्योंकि रामू बाबूने बड़े यत्नसे आज ही दिनमें उन सबकी सफाई करा दी थी। जगह २ नंगी तथा मन-मोहिनी स्त्रियोंके चित्र भी टंगे हुए थे, इसके अतिरिक्त विलासकी और सब वस्तुएं वहां मौजूद थीं।

कोठी भरमें केवल चार ही कमरे थे, जिनमेंसे दो सजाये गये थे, शेष दो बन्द रख छोड़े गये थे। उन्हीं सजे हुए कमरोंमेंसे एकमें जाकर वे तीनों बैठ गये। मैनेजर साहबने रामूबाबूकी तरफ कुछ संकेत किया, उन्होंने तुरन्त एक आलमारीमेंसे एक बोतल, दो-तीन कांचके गिलास और कुछ नमकीन निकालकर सामने मेजपर रख दिया और फिर वे तुरन्त ही कमरेसे बाहर गये, कारमें बैठकर ड्राइवरको इशारेसे कहा। ड्राइवरने इशारा पाते ही कार चला दी और एक बार फिर वह नीली कार देहरादूनकी ओर भागने लगी।

इधर मैनेजर साहबने गिलासमें शराब ढालकर जमींदारके आगे पेश किया और बोले—"शौक कीजिये।" जमींदार साहबने मुस्कराते हुए गिलास हाथमें थाम लिया और चढ़ाते हुए बोले—"कहिये, आज किस लिये इतनी रातको मुझे याद किया?"

वे बोले—"यह तो आपको मालूम ही हैं कि जब किसी काममें सहायताकी जरूरत होती है, तब मैं आपको याद करता हूँ। जो भी काम मैं करता हूँ बिना आपकी राय लिये नहीं करता। मेरी कम्पनी गर्तमें

गिर चुकी थी, परन्तु आपकी कृपासे अब पुनः वह वास्तविक ढङ्गसे चलने लगी है। अब इस बार आपको कष्ट दिया है, यह बात रामूबाबू द्वारा सुन ही चुके होंगे—बस और क्या कहूँ।"

जमींदार साहबने नमकीनके प्लेटपर हाथ झाड़ते हुए कहा—"मैं आपके हर काममें सहायता देनेके लिये तैयार हूँ—सुना था कि किसी अङ्गरेज महिलाने आपका बड़ा अपमान किया है तभीसे आप बदला लेना चाहते हैं—बदलेकी बात तो कोई महत्वपूर्ण नहीं है; हां आप उससे प्रेम करते हैं, इसके लिये जो चाहे आप उसका मूल्य लगा सकते हैं, यथाशक्ति आपकी इच्छा पूरी करानेकी मैं कोशिश करूंगा।"

"वह तीस हजारका बौंड लिखाना चाहती हैं, उसीके लिये मुझे आपको बुलाना पड़ा है"—मैनेजर साहबने गिलासको दुबारा भरते हुए कहा।

"तीस हजारका बौंड लिखाना चाहती है"—जमींदार साहबने विस्फारित नेत्रोंसे देखते हुए पूछा—"तो क्या यह सारी रकम एक मुश्त ही जमा करनी पड़ेगी?"

उन्होंने कहा—"नहीं साहब, ऐसे हम कोई पागल थोड़े ही हैं। आपको केवल इतना ही करना होगा कि जब मिस जिंजर यहां आजावे तब दो चार मामलेकी बात करके आप चले जांय। बस यही काम है आपको, न किसीको रुपया देना है और न लिखना है बौंड"

"लेकिन इससे क्या मतलब सिद्ध होगा आपका"—जमींदार साहब बोले।

"आपके यहां मौजूद होनेसे एक तो उसे यह विश्वास हो जायेगा

कि वास्तवमें तीस हजारका बौंड लिखनेकी हम क्षमता रखते हैं—चूंकि आप एक प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं इसलिये उसे किसी प्रकारका शक भी नहीं होगा। दूसरी बात यह है कि उसके यहां आ जानेपर आप रुपयोंका प्रबन्ध करनेके बहाने यहांसे वापस जा सकते हैं। वह यहां अकेली रह जायेगी, फिर मैं स्वयं समझ लूंगा उस छोकड़ीको।"

मैनेजर साहबकी कूटनीतिपर जमींदार बाबू हंसे बिना नहीं रह सके—वे उन्हें बहुत पहलेसे जानते थे। नशेके झोंकमें पलक मारते, सारी जीवनी उनकी निर्निमेष आंखोंके सामने नाच गई। मैनेजर साहब पहले क्या थे—एक धनाढ्य हिन्दू पिताके एकमात्र लाड़ले पुत्र, एक भाई भी था इनसे बड़ा। परन्तु वह बेचारा नई दुलहिनके घरमें आते ही कुछ दिनों बाद परलोक सिधार गया—चार महीनेके भीतर २ माता-पिता दोनोंका भी स्वर्गवास हो गया। अब घरमें रह गये केवल देवर और भाभी और थी विपुल धन सम्पति। काम काज सम्भालनेके लिये नौकर चाकर थे इन्हें कहीं जानेकी फिर क्या जरूरत थी, सारा दिन और रात घरहीमें पड़े रहते थे। भाभी थी जवान और ये भी थे ऐसे ही, दोनोंकी पटरी बैठ गई और थोड़े ही दिनोंमें विलासकी आनन्दमयी धारामें डूबने उतराने लगे।

परिणाम स्वरूप भाभीके रह गया गर्भ, लोगोंकी बदनामीसे बचनेके लिये बेचारीको लेकर मथुरा पहुँचे और धोखेसे उसे वहीं छोड़कर अकेले भाग आये—तबसे नहीं मालूम उस गरीबनीका क्या हाल हुआ? यहां आकर इन्होंने फांसा फिर एक पादरीकी खूबसूरत लड़कीको और आखिर उसीके पीछे इन्हें अपना धर्म भी छोड़ना पड़ा।

ईसाई बनकर उसके साथ शादी कर ली—वह बेचारी भी एक लड़की पैदा होनेके बाद प्रसूति कालमें ही इस संसारको छोड़कर चल बसी। और अब ये मिस्टर पिकाक घरमें रंभा जैसी जवान बेटीके होते हुए भी उस अंगरेज लड़कीके पीछे पड़े हुए हैं।

दून एलेक्ट्रिक कम्पनीके मैनेजर मिस्टर पिकाककी पिछली जीवनीको जमींदार साहब एकबारगी ही दोहरा गये। वासनाके कितने सच्चे उपासक हैं ये कि उन्होंने अपना धर्म छोड़नेमें तनिक भी संकोच नहीं किया—इन्हीं बातोंको सोचते सोचते उन्हें एक झपकी आ गई किन्तु दूसरे क्षण ही मैनेजर साहबने उनका हाथ पकड़कर उन्हें सावधान कर दिया। जमींदार साहब चौंकते हुए उठ बैठे और बोले—"क्यों क्या बात है?" मैनेजरने धीरेसे कहा—"वह आ गई है।"

दोनों संभलकर बैठ गये। कोठीसे बाहर आकर कार ठहर गई और क्षणभर पश्चात ही रामूबाबू अपने साथ एक अंग्रेज लड़कीको लिये हुए कमरेके भीतर आये। यही यूरोपियन लड़की मिस जिंजरके नामसे प्रसिद्ध थी; यह वास्तवमें अनुपम सुन्दरी थी। उसकी आयु अठारह वर्षके लगभग होगी, गौरवर्णका लालिमा-युक्त उसका चेहरा, बड़ी-बड़ी भूरे रंगकी आंखें सिरपर सुनहरे पर घुंघराले केश, हृष्ट-पुष्ट सुगठित शरीर—सभी कुछ आकर्षक था। काले साटनका बना हुआ चुस्त साया, गलेमें पड़ी हुई श्वेत मोतियोंकी माला यौवनके दोनों उभारोंके बीचमें पड़ी हुई बड़ी सुन्दर प्रतीत होती थी। देखने वालोंका मन बरबस ही उस ओर आकर्षित हो जाता था। वह सुन्दरी थी, वास्तवमें अनुपम सुन्दरी!

कमरेमें पदार्पण करते ही दोनोंने उठकर उसका स्वागत किया ! मैनेजर साहबने मिस जिंजर तथा जमींदार साहबका परस्पर परिचय कराया। जमींदार साहबने आगे बढ़कर बड़े तपाकसे हाथ मिलाया और फिर अपनी कुर्सी पर बैठ गये। कुछ इधर उधरकी बातें होनेके बाद सबसे पहले जमींदार साहबने ही बात उठाई—'तो मिस जिंजर, आप मि० पिकाकके साथ शादी करनेको तैयार हैं ?''

मिस जिंजरने उनकी ओर देखते हुए उत्तर दिया—''हां तैय्यार हूँ वशर्तें कि ये तीस हजारका बौंड मेरे नाम लिख दें।''

''ओह, इसके लिये आपको फिकर करनेकी जरूरत नहीं—आपके राजी हो जानेपर ये भी आपकी शर्त पूरी करनेको तैय्यार हो जायेंगे।'' जमींदार साहबने उसे सान्त्वना देते हुए कहा। मिस जिंजरने कुछ चंचलता मिश्रित भोलेपनसे उत्तर दिया—

''आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य है। शर्त पूरी हो जानेपर इनके साथ शादी करनेमें मुझे कोई एतराज न होगा, परन्तु इससे पहले किसी बातका होना एकान्त रूपसे असम्भव होगा।''

''आपकी शर्त आधा घण्टेके भीतर अभी पूरी हुई जाती है।'' मुस्कराते हुए वे उठकर कमरेसे बाहर हो गये, रामूबाबू भी उन्हींके साथ था। मिस जिंजरने कुछ कहनेके लिये मुंह खोला ही था कि पलक मारते ही वे दोनों कारमें बैठकर वहांसे चलते बने।

उनके जानेके बाद मि० पिकाक और मिस जिंजर ही वहां रह गये थे। नशेमें मि० पिकाक पहले ही से चूर थे, उनकी दोनों आंखोंमें मादकता झलक रही थी; जिसे देखकर मिस जिंजरको बड़ा डर

लगा, परन्तु करती क्या बेचारी, अकेली थी। मिस्टर पिकाकने दोनों के जाते ही उठकर भीतरसे दर्वाजेकी कुंडी चढ़ा दी। दर्वाजा बन्द करके वे वापस मुड़े ही थे कि मिस जिंजरसे टक्कर लगी—उसे देख वे एक अट्टहास करते हुए बोले—ओहो, तो क्या आप दर्वाजा खोलना चाहती हैं ? मगर याद रक्खो मिस जिंजर यह दर्वाजा अब मेरी प्यास बुझे बगैर नहीं खुल सकता—मैं उस अपमानका बदला लेना चाहताहूँ, बदला !"

कहते हुए वे मदमाते हाथीके समान उन्मत्त हो उसकी ओर बढ़े और एक ही झपाकेमें लपक कर उसे अपनी भुजाओंमें जकड़ लिया। अपनेको छुड़ानेके लिये वह बहुत तिलमिलाई, हाथ पैर मारे, रोई-गिड़गिड़ाई, पर कुछ न कर सकी ? छातीसे चिपकाये हुए ही वे उसे उठाकर दूसरे कमरेमें ले गये, जहां एक पलंग पर मुलायम गद्देदार बिछौना बिछा हुआ था। यहां आकर उन्होंने उसे पलंग पर डाल दिया और अपने मोटे शरीरसे उसे दबा लिया। नीचेसे निकलने की उसने बहुत कोशिश की, पर इसमें वह सफल न हो सकी।

कोई बीस पचीस मिनटके बाद वे दोनों अलग हुए। मिस जिंजरके चेहरे पर क्षोभ तथा आत्म-ग्लानिके चिन्ह स्पष्ट रूपसे अंकित थे और मि० पिकाक बैठे थे, एक विजयीके समान अस्त-व्यस्त दशामें ठीक उसीके सामने !

ठीक जब कि ये दोनों ऐसी दशामें बैठे हुए थे 'धायं धायं' करके दो गोलियां खिड़कीका शीशा तोड़कर कमरेमें आई और दूसरी क्षण वे दोनों भूमि पर लोटते दिखाई देने लगे—यह था उनके पाप-कर्मके परिणामका नग्न दृश्य !

———

बारहवां परिच्छेद
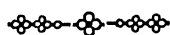
बहुत पहले की बात है। एक दिन रंभाके हाथ एक फोटो लग गई जो उसीके पिताके बक्समें रखी थी। फोटो एक सुन्दरी स्त्रीका था, इस लिये पिताके बक्समें पाकर उसे आश्चर्य हुआ तथा एक प्रकारका सन्देह भी। वह सोचने लगी यह फोटो किस स्त्रीका हो सकता है, इसका मेरे पिताके साथ क्या सम्बन्ध हो सकता है? कहीं ये......इसी प्रकारके बहुतसे विचार उसके मस्तिष्कमें एक बारगी ही उठ खड़े हुए—उसे अपने पिताके चरित्र पर संदेह होने लगा। अवश्य ही कुछ दाल में काला है, अतः शंका समाधान करनेकी मनमें ठानकर उसने उसी दिन रातको अपने पितासे फोटोके बारेमें पूछा।

मि० पिकाक पहले तो उसे यों ही बात बनाकर टाल देना चाहा परन्तु वह भला ऐसे कब माननेवाली थी? हठीली थी ना, जिद् पकड़ गई। इकलौती पुत्री होनेके कारण उन्हें साफ साफ सारी बातें बतानी पड़ी। जब उसे ज्ञात हुआ कि यह फोटो उनकी भाभी अर्थात् उसीकी ताईकी है तो उसे बड़ा खेद हुआ। पहले तो उसके साथ वे मनमानी कार्यवाही करते रहे और जब उसके गर्भ रह गया तो किस निर्दयतासे बेचारीको मथुरा जाकर धोखेसे छोड़ आये। अपना पाप छिपानेके लिये उन्होंने किस कायरतासे उस अभागिनीके साथ कटु व्यवहार किया? छिः छिः।

जो हो गया, सो हो गया परन्तु अब भला उसे परदेश का दु:ख क्यों उठाने दिया जाय, यह विचारकर उसने अपने पितासे मथुरा जाकर उसे वापस लानेके लिये कहा, जिसके लिये ये बहुत कहने सुननेसे राजी होगये साथमें उसने भी चलनेकी इच्छा प्रकट की और कहा—इसी बहाने से मथुराकी सैर हो जायगी। मि० पिकाक को उसे भी साथ ले चलने के लिये बाध्य होना पड़ा और वे उसी दिन रातकी गाड़ीसे मथुरा जानेके लिये देहरादूनसे बिदा हो गये। मथुरा जाकर वे चार पांच दिन तक वहां रहे और उसे ढूंढनेकी उन्होंने बहुत कोशिश की, परन्तु लाख ढूंढने पर भी उसका कहीं पता न चला।

मन्दिरोंमें, धर्मशालाओंमें तथा जमुना मैय्याके तट पर बने लगभग सभी घाटों पर ढूंढनेसे भी मि० पिकाक को उनकी भाभी न मिली तो अन्तमें निराश होकर वे वहां से वापस चले आये। रंभाको अपनी ताई से मिलनेकी बलवती इच्छा थी परन्तु यथाशक्ति प्रयत्न करने पर भी जब वह न मिली तो बेचारी मन मसोस कर रह गयी और चुपचाप ही अपने पिताके साथ गाड़ीमें आकर बैठ गयी। स्टेसन पर हरपाल जैसे कुलीके साथ वास्ता पड़ा—मनीबेग चुरानेकी उसने चेष्टाकी, रंभाने देखते हुए भी उसके काममें बाधा नहीं पहुँचाई, प्रत्युत पांचसौकी रकम जाती हुई देखकर भी उसे देहरादून बुलाकर भाग्य परीक्षा करनेका अवसर दिया।

वह जानती थी, उसके पिता जितना धन संचय करते हैं उसमें अधिकांश भाग बेईमानीसे दूसरोंका गला घोंटकर ही एकत्र किया हुआ है, अतः किसी निर्धन अथवा दरिद्रके हाथों पांचसौकी यह तुच्छ रकम लग जानेसे उसका उपकार ही होगा जिसके पुण्यके प्रभावसे बहुत संभव

है पिताके उपर कोई क्रूर ग्रह आया हुआ टल जाये। दूसरे इतनी रकम हाथसे चली जाने पर भी उनकी कोई विशेष हानि होनेकी संभावना नहीं थी। एक बात और भी, उसने हरपालको देहरादून आनेका संकेत क्यों किया? इसका कारण यह था कि हरपाल चूंकि मथुराका ही रहने वाला था, इसलिये इसके वहां आजाने पर मथुरा तथा मथुरामें रहने वालोंका हालचाल पूछनेमें उसे काफी सहायता मिलती, इसीलिये उसने उसे देहरादून बुला भेजा।

हरपाल देहरादून पहुँचा और बड़े कौशलसे कोठीका पता लगाता हुआ रंभाके पास तक पहुँच गया। रंभाने उसे कोठीके भीतर ले जाकर सबसे पहले उसीकी जीवनी सुनी। हरपालने अपना तथा अपनी भिखारिन मांका सारा हाल विस्तार पूर्वक उसे कह सुनाया। रंभाने सुना, और जब उसे यह मालूम हुआ कि वह एक भिखारिनका लड़का है, जिसकी अवस्था पहले बहुत अच्छी थी तथा उसके शरीर पर मूल्यवान वस्त्राभूषण भी थे जिन्हे बेच २ कर उसने अपना तथा हरपालका पालन पोषण किया था, वह गर्भावस्थामें ही मथुरा पहुँची थी इत्यादि, बहुत सी बातें सुनकर उसके मनमें एक नया संदेह पैदा हो गया।

अपना संदेह दूर करनेके लिये उसने उसी दिन उसे बीस रुपये देकर मांको लानेके लिये वापस मथुरा भेज दिया। वह चाहती थी उस फोटोके साथ उसकी मांका एक बार मिलान करना। कौन जाने वही उसकी ताई हो—परन्तु यदि ऐसा हुआ तो फिर वह उसे ताई कहे या मां—यह प्रश्न उसके मनमें बिजलीकी तरह दौड़ गया। पड़ोसके बच्चों से उसे 'मां' शब्दका ज्ञान हुआ था। नहीं तो बेचारी जानती भी न

थी कि मां किसे कहते हैं। अतः 'ताई' की अपेक्षा उसने 'मां' शब्द को ही अधिक प्रिय समझा और फिर हरपालके नाते वह थी भी तो उसकी मां ही, फिर क्यों न उसे वह मां कहे।

हरपालको गये हुए आज सात रोज हो गये। उसे वापस आजाना चाहिये था किन्तु अभी तक नहीं आया था—आज रंभा उसीके बारेमें सोचते २ कुछ अधीर सी हो रही थी। गत रात्रिमें उसके पिता भी घर नहीं आये थे, उनकी चिन्ता भी रह २ कर उसे चंचल बना जाती थी—वे कभी रातके समय घरसे बाहर नहीं रहा करते थे, परन्तु आज न जाने क्यों वे बिना कहे सुने ही घरसे बाहर चले गये थे। चले भी जाते तो कमसे कम सूचना देनी चाहिये था। यही सब सोचते-विचारते वह कुछ अनमनी सी हो रही थी कि इतनेमें एक तंगा आकर कोठीके आगे ठहरा और उसमें से दो सवारियां उतरीं।

रंभाने कमरेसे बाहर निकल कर देखा—यह हरपाल था और साथ में थी उसकी भिखारिन मां भी। देखते ही रंभा आगे बढ़ी—पहली दृष्टिमें ही उसने यह मालूम कर लिया कि भिखारिनकी सूरत बिलकुल उस फोटोसे मिलती जुलती है। इसमें और उसमें कोई अन्तर न पाकर उसे सन्तोष हुआ और अब वह उसे मां कहे बिना भी नहीं रह सकी, दौरकर उससे लिपट गई। भिखारिनके नेत्रोंमें भी आंसू आगये; यही वह कोठी थी जिसमें आजसे बीस वर्ष पहले वह अपने देवरके साथ रहा करती थी—अतीतकी यादने उसके मनका बांध तोड़ दिया और वह रंभाको हृदयसे लगाकर बड़ी देर तक रोती रही।

हरपाल पहले तो यह दृश्य देखकर बड़ी देर तक स्तब्ध खड़ा रह

गया, उसे स्वप्नमें भी यह ध्यान नहीं था कि इस संसारमें मांके अतिरिक्त कोई और भी उसका है, किन्तु जब उसे वास्तविक बातका पता चला तो हर्षके मारे उछल पड़ा। ओह, एक साधारण कुलीसे वह इतनी जल्दी एक धनाढ्य लड़कीका भाई बन जायगा—इसकी उसने स्वप्नमें भी कल्पना नहीं की थी। मन ही मन वह प्रसन्न हो रहा था। कुलीगिरी करके ही आज वह इस पदवीको पहुँचा था। रंभा उसकी बहन थी और वे मोटे महाशय स्वयं उसीके पिता थे—मनीबेग चुराते समयकी बात याद करके वह संकुचित हो गया। बहनके सामने आते हुए उसे लज्जा-सी आने लगी।

पिताकी प्रतीक्षा किये बिना ही रंभाने उसे अपनी कोठीमें ठहरा लिया और स्नानादि कराके नये २ वस्त्र उसे पहननेको दिये। रंभा और हरपाल, आज दोनों ही के मनमें हर्ष और आनन्दका एक स्रोत उमड़ पड़ा था—दोनों ही प्रसन्न थे। रंभाको मां मिल गई थी और हरपालको बाप—अधूरा घर पुनः भर गया था। हरपाल और उसकी मांको जब मालूम हुआ कि वे अपना धर्म छोड़कर ईसाई बन गये हैं, तो इससे उन्हें दुःख अवश्य हुआ, परन्तु दिलसे ममता दूर नहीं हुई। रंभाने उनके खाने-पीनेका प्रबन्ध उन्हींके कहनेके अनुसार अलग कर दिया और वे सब उसी कोठीमें रहने लगे।

बहुत देर तक इधर-उधरकी बातें होती रहीं। बातों २ में वृद्धाने पूछा—"क्यों बेटी, तुम्हारे बाबूजी कहां रहते हैं? जबसे हम आये हैं, वे दिखाई नहीं दिये।"

रंभा बोली—"वे रहते तो यहीं हैं मां, परन्तु आज न जाने रात भरसे कहां हैं?"

उसने पूछा—"तो क्या वे कहीं आते-जाते समय बता कर नहीं जाते?"

उत्तर मिला—"वैसे तो वे कहीं बाहर जाते समय बता कर ही जाते हैं, परन्तु आज न जाने क्यों वे बिना सूचना दिये अभी तक घरसे बाहर हैं। कल शामके चार बजे वे कम्पनीका दफ्तर बंद होने पर यहां आये थे, फिर उसके बाद रैकिट लेकर क्लब चले गये और तबसे अभी तक लापता हैं—भगवान जाने क्या कारण हुआ।"

एक विचित्र प्रकारकी आशंकासे वह सिहर उठी। पिता चाहे अन्यायी, निर्दयी अथवा चोर डाकू लम्पट ही क्यों न हो, आखिर हैं तो पिता ही। फिर उसके लिये चिन्ता करना तो अनिवार्य ही ठहरा। वृद्धाने रंभाका मुख कुछ उदास-सा देख उसका मन दूसरी ओर फेरती हुई बोली—"बेटी, तुम पढ़ती-लिखती नहीं हो कुछ?"

रंभाने उत्तर दिया—"घर ही पर मास्टरनी आती हैं, उन्हींसे पढ़ा करती हूँ। बड़ी अच्छी मास्टरनी हैं—गाना बजाना खूब जानती हैं, परन्तु कभी हंसती नहीं हैं।"

उसने पूछा—"वे किस समय आया करती हैं बेटी?"

"उनका कोई समय निश्चित नहीं है, कभी भी चली आती हैं। वैसे प्रायः वे शामको ही आया करती हैं। जिस समय बाबूजी दफ्तरसे आकर क्लब चले जाते हैं, प्रायः उसी समय वे मेरे पास आया करती हैं—बाबूजीसे बोलते हुए मैंने उन्हें आज तक नहीं देखा।"

"फिर तुम्हें पढ़ानेके लिये उनसे किसने कहा ?" वृद्धाकी बात सुनकर वह बोली—

'हमारे दफ्तरमें एक रामूबाबू नामके हेड क्लर्क हैं, उन्हींके द्वारा बातचीत हुई थी और वे ही यहां लाये भी थे। स्वभाव की बड़ी अच्छी हैं। कभी किसीसे लड़ती झगड़ती नहीं—मुझे बड़ा प्यार करती हैं, पहले जब मैं बहुत छोटी थी तो नई २ गुड़िया लाकर दिया करती थीं और अब भी कुछ न कुछ लाती ही रहती हैं।"

"ओह, तब तो बहुत अच्छी हैं वे"—निःश्वास छोड़ते हुए वृद्धाने कहा। रंभा कुछ कहने ही वाली थी कि इतनेमें कोठीके भीतर उसके पिताकी नीली कार आकर रुकी। तीनोंने उठकर देखा—आह ! यह क्या ? मिस्टर पिकाक जख्मी पड़े हुए थे और रामूबाबू तथा डा० वर्मा उन्हें उठाकर कमरेमें लानेकी कोशिश कर रहे थे। रंभा दौड़ती हुई उनके पास पहुँची और रामूबाबूकी ओर देखती हुई बोली—"बाबूजीको यह क्या हुआ रामूबाबू ?"

"घबराइये नहीं, सब ठीक हो जायगा।" कहते हुए वे लोग उन्हें उठाकर कमरेमें ले गये। हरपालने भी उन दोनोंके कामोंमें उन्हें सहायता पहुँचाई।
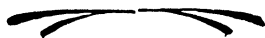
तेरहवां परिच्छेद

डाक्टर यशदत्त वर्मा एक अच्छे और होनहार डाक्टर थे। उनकी चिकित्सा सराहने योग्य थी। वे किसी भी रोगीकी चिकित्सा उसका रोग मालूम करनेके बाद इस ढंगसे करते कि रोगी बहुत थोड़े समयमें ही पुनः अपनी असली हालत पर आ जाता। उनका सिद्धान्त था कि रोगीको औषधि आदिका प्रयोग करानेके साथ २ उसके मनोरंजनकी सामग्री एकत्र करना भी एक डाक्टरका परम कर्तव्य है। जब तक रोगी उनके इलाज में रहता, तब तक वे उसे कोई न कोई बात सुन कर हंसाते रहनेका प्रयत्न करते रहते। वे स्वभावसे ही कुछ हास्य-प्रिय हो गये थे। उनकी वाणीमें माधुर्य भरा रहता था।

कुन्दनपुरके निकट ही एक उद्यानमें उनका पक्का, छोटा-सा परन्तु नये ढंगका बंगला बना हुआ था। बंगलेके चारों ओर बगीचा फैला हुआ था, जिसमें कई नालियां हर समय पानीसे भरी हुई बहती रहती थीं। यह उद्यान तथा बंगला इनका अपना ही था, अपने परिश्रमकी कमाईसे ही उन्होंने ये चीजें तैयार कराई थीं। माता-पिता बचपनमें ही छोड़ कर परलोक सिधार गये थे। नानीने पाल-पोस कर इन्हें बड़ा किया था और उन्हींकी कृपासे हरद्वार मेडिकल कालेजसे उन्हें डी० आई० एम० की डिग्री प्राप्त हुई थी। थे भाग्यके धनी—गांवमें दुकान खोलते ही प्रेक्टिस चल निकाली।

बहुत शीघ्र ही अपनी अचूक चिकित्सासे उन्होंने जनसाधारणमें आशातीत सफलता प्राप्त कर ली और नित्य-प्रति उनकी ख्यातिको चार चांद ही लगते चले गये। दूर २ के गांवसे रोगी उनके पास इलाज कराने आने लगे। उनके हाथोंमें यश था, रोगी आते और पचानबे प्रतिशत चंगे भले होकर अपने २ घरोंको वापस चले जाते, हजारों दुखित हृदयोंसे, ठीक होजाने पर उनके प्रति शुभाशीर्वादकी ध्वनि निकलती। वे भी परमात्माके ऊपर भरोसा करके नित्य ही अपने काम पर जुट जाते और उन्हींकी कृपासे रोगियोंके असाध्य रोग पर भी विजय प्राप्त कर लेते। वे परिश्रमी थे, वास्तवमें अत्यन्त परिश्रमी!

एक बात और उनमें विशेषताकी यह थी कि वे किसी भी रोगीके रोग का गुप्तभेद अन्य व्यक्ति पर प्रकट नहीं करते थे। मुन्शी छेदीलालने आत्म-हत्या कर ली थी—डाक्टर वर्मा ने ही जाकर उसे पुनः जीवित कर लिया था, साथ ही कुमारके मना करने पर उन्होंने आज तक यह बात किसीसे भी नहीं कही थी। छेदीलालकी आत्म-हत्याकी बात चन्द्रा, कृष्णा, कुमार और डाक्टर, केवल इन चारों व्यक्तियोंके अतिरिक्त और किसी को भी आज तक मालूम नहीं हो सकी थी। दूसरी बात विशेषता की उनमें यह भी थी कि वे दवाके मूल्यके लिये कभी किसी पर दबाव नहीं डाला करते थे, जो जिसने दे दिया, वही ले लिया।

आज प्रातः काल जब कि वे अभी सोकर भी नहीं उठे थे, रामूबाबू उनके बंगले पर पहुँचे और बड़ी शीघ्रतासे दर्वाजा खुलवा कर उनके सामने पहुँच गये। छोटेसे गांवमें चूंकि थोड़े बहुत लोग ही रहा करते हैं, इस लिये सभी थोड़ा बहुत एक दूसरेसे परिचित होते हैं। डाक्टर

साहब रामूबाबूसे भली भांति परिचित थे, उन्हें घबराया हुआ सामने खड़ा देखकर वे आगे बढ़े और उनका हाथ थामते हुए बोले—"क्यों रामूबाबू, खैर तो है, आज यह बे वक्तकी आमद कैसी ? कहीं कुछ···"

"जल्दी कीजिये डाक्टर साहब, देर करनेका मौका नहीं, दो खून हो गये हैं।" डाक्टर साहबका हाथ छोड़कर वह घबराहटके मारे जल्दी जल्दी कमरेमें इधर उधर घूमने लगे—घबराहट भी उनकी चरम सीमा को पहुँच चुकी थी, जिसे देखकर डाक्टर साहब भी एक बारगी ही चकरा गये—अनायास ही उनके मुखसे निकल गया—

"खून ! और फिर एक नहीं दो-दो ! मगर कहां !" डाक्टर साहब की बात पर कुछ खीझ कर रामूबाबूने पुनः उनका हाथ पकड़ लिया और बोले—

"ओफ ! जल्दी कीजिये, आपको सब मालूम हो जायगा। अभी एक व्यक्तिके थोड़ा २ श्वास चल रहा है, देर हो जाने पर वह भी मर जायगा, इसीलिये जल्दी कर रहा हूँ।"

डाक्टर साहबने स्थिति जानकर अधिक बात करना अब उचित नहीं समझा और बहुत शीघ्र ही अपनी औषधियोंका बक्स उठाकर उनके साथ चल दिये। उन्हें देरी करनेकी आवश्यकता ही न थी। बक्स उठाया और रामूबाबूके साथ चल दिये। बंगलेके दर्वाजेसे सटी हुई नीले रंगकी कार खड़ी थी। उसीमें दोनों बैठ गये। रामूबाबूने ड्राइवर को इशारा किया और कार भर्राटेके साथ सड़क पर दौड़ने लगी।

जिस कोठीमें रातके समय हत्या-काण्ड हुआ था उसीके सामने जाकर कार रोक ली गई। रामूबाबू डाक्टर साहबको लिये हुए बड़ी

शीघ्रतासे कमरेमें गये। भीतरका दृश्य देखकर डाक्टर वर्मा स्तब्ध खड़े रह गये—पलंगके चारों ओर खूनके छींटे पड़े थे, जो इस समय तक जमकर पके हुए कत्थेके समान प्रतीत हो रहे थे। मिस जिंजर अभी पलंगपर ही पड़ी थी कि पिस्तौलकी गोली उसके सीनेको भेदकर उस पार निकल गई थी और मि० पिकाक पलंगसे नीचे औंधे मुंह पड़े हुए थे, हिल जानेके कारण सीनेमें न लगकर गोली उनके कंधेसे नीचे होकर निकल गई थी।

डाक्टर साहबने भली प्रकार दोनोंका निरीक्षण किया और तब उन्हें मालूम हुआ कि मिस जिंजर गोली लगते ही समाप्त हो चुकी थी अब केवल निर्जीव शरीर ही उसका वहां पर पड़ा हुआ था। मि० पिकाकके गोली चूंकि कन्धेके नीचेसे होकर निकल गई थी, इस लिये वे अभी तक जीवित थे, परन्तु शरीरसे रक्त अधिक निकल जानेके कारण बचने की आशा बहुत कम थी। वे इस समय बिलकुल संज्ञा-हीन थे, नाड़ी भी मन्द गतिसे चलकर यही सूचना दे रही थी कि बच जांय तो उनका भाग्य, अन्यथा मृतके समान तो वे थे ही। दाहिना कंधा गोली लग जानेके कारण एकदमसे बेकार हो चुका था और औंधे मुंह जोरसे गिरनेके कारण मस्तिष्क भी घूम गया था।

सर्व प्रथम उन्होंने वहीं पर उनका जख्म आदि धोकर पट्टी बांध दी फिर कोई दवा एक शीशीमें से निकाली और उसे नलके द्वारा मुंह खोल कर उनके हलकसे नीचे उतार दी। यह दवा उनके हृदयकी कमजोरी दूर करनेके लिये ही उन्हें पिलाई गई थी। यह सब कर चुकनेके बाद उन्हें उठाकर बाहर ले जाया गया और बड़ी सावधानीसे वे कारकी

पिछली सीट पर लिटा दिये गये। मिस जिंजरकी दवा दारू करनेकी तो कुछ जरूरत थी ही नहीं, क्योंकि डाक्टरको किसी प्रकारका कष्ट देनेसे पहले ही वह इस संसारसे चल बसी थी—हां, पुलिसकी कड़ी निगाहोंसे बचनेके लिये उसे ठिकाने लगाना अनिवार्य था।

मामला पुलिसके हाथोंमें पहुँच जाने पर चूंकि जमींदार साहब तथा रामूबाबूके भी फंसनेकी आशंका थी, इस लिये अपनी इज्जत बचानेके लिये वे लोग इस भेदको गुप्त रखनेकी यथाशक्ति कोशिश कर रहे थे। और कोई तरकीब तो उन्हें जल्दीमें सूझी नहीं, केवल उसके मृत शरीरको उन्होंने उसी कमरेमें बन्द करके बाहरसे ताला ठोंक दिया। एक प्रकारकी तरल औषधि उसके समस्त शरीर पर अवश्य मल दी गई ताकि दो चार दिन तक लाश पड़ी रहने पर भी उसमें से दुर्गन्ध न निकले। फर्श पर से खूनके धब्बे भली प्रकार साफ करके वहां फिनाइल छिड़क दिया गया, बात फैले नहीं इस लिये रामूबाबूको स्वयं ही यह काम करना पड़ा।

इधरका काम सब ठीक करके डाक्टर साहब तथा रामूबाबू कारमें बैठ गए और वह इन सबको लिये हुए एकबार पुनः कार मि० पिकाककी कोठीकी ओर दौड़ने लगी। चारों तरफके पर्दे नीचे गिरा दिये ताकि देखनेवाले समझें कि कारमें पर्दानशीन सवारियां बैठी हुई हैं। कोठी तक पहुँचनेमें मुश्किलसे बीस मिनट खर्च हुए होंगे—पहुँचते ही वहांका कुछ रंग ढंग ही बदल गया। रंभाने चिरकालसे बिछुड़ी हुई अपनी एक नई मां पाई थी, हरपालको रंभा जैसी बहन मिल गई थी और वृद्धाका तो कुछ पूछना ही न था—उसे तो अपने बिछुड़े हुए

सम्बन्धी क्या मिल गये थे मानों विश्व भरकी निधि ही मिल गई थी।

घर पहुँचने पर जब रंभाने अपने पिताकी ऐसी दशा देखी तो वह एक बारगी ही घबरा उठी—उसने रामूबाबूका कंधा पकड़कर झिकझोरते हुए कहा—"रामूबाबू यह क्या हुआ ? पिताजीकी ऐसी दशा किसने की ? ये रात भर कहां थे ? इनके कंधेमें पट्टी कैसी बंधी है ?"

रामूबाबू एकदमसे इतने प्रश्न सुनकर सकपका गये। सच्ची घटना बतानेसे उसके सिरपर घोर आपत्ति आनेकी आशंका थी अतः उसने बहाना बनाते हुए कहा—"कल शाम किसी जरूरी कामसे ये राजपुर जा रहे थे, रास्तेमें कुछ बदमाशोंने मिलकर इन पर हमला कर दिया, इन्होंने भी उनका मुकाबला किया मगर वे लोग कई थे इस लिये ये कुछ नहीं कर सके।"

"तुम उस वक्त क्या अपनी भेंड़ बकरी चुगाने चले गए थे"—क्रोधमें भरे हुए उसने पूछा।

"नहीं जी, मुझे तो उस वक्त इन्होंने दूसरा काम सौंप दिया था, नहीं तो मेरे होते हुए ऐसी दुर्घटना ही क्यों होने पाती"—डींग मारते हुए उन्होंने रंभाको सन्तुष्ट करनेकी कोशिश की परन्तु वह भला कब माननेवाली थी, उनकी आदतसे वह भली प्रकार परिचित थी, कई बार पहले भी वह उनकी शेखीकी बातें सुन चुकी थी। उनकी बात पर वह उबल पड़ी और बोली—

"तुम पूरे हरामखोर हो रामूबाबू ! तुम्हें अपने मालिककी रक्षा करनी आती ही नहीं। दफ्तरका काम किया और टके महीनेपर गिनवा लिये—बस इसीको समझते हो न तुम अपना कर्तव्य ?"

रंभाका पारा एकदमसे चढ़ गया—मुकाबला करनेकी ताब रामूबाबू में नहीं थी, वे चुपचाप सिर झुकाये ही खड़े रहे। डा० वर्माने समझा बुझाके उसे शान्त किया।

और जाते वक्त मि० पिकाकको इधर उधर न हिलने देनेका आदेश किया। रंभाने बड़ी नम्रतासे उन्हें कहा—"आपके बिना इनकी चौकसी किसीसे न हो सकेगी—अच्छा हो डाक्टर साहब, यदि आप दो चार दिन अपने कीमती वक्तका अधिक भाग इस ओर खर्च कर सकें।" डाक्टर साहब फिर आनेका वादा करके वहांसे चलते बने।

रामूबाबू भी कोठीसे निकल कर दफ्तरकी ओर चल दिये किन्तु जिस समय वे उस दौड़से मुड़ने लगे एक मोटर साइकिल सामनेकी सड़कसे दौड़ती हुई आई और इनसे टकराती हुई सीधी भागी चली गई। उसे कुछ भी हानि नहीं पहुँची, परन्तु रामूबाबू बेचारे बुरी तरहसे औंधे मुंह सड़कपर गिर पड़े। उनका कोट और पाजामा धूलमें खराब हो गया, सिरमें मिट्टी भर गई। ठेहुनी और घुटने छिल गये थे—गिरते २ ही उन्होंने देखा मोटर साइकिल चलानेवाला एक सुन्दर, सुदृढ़ अङ्गरेज नवयुवक था, जिसने इस बेदर्दीके साथ उन्हें सड़कपर गिराकर एकबार उनकी ओर घूमकर भी नहीं देखा। 'फटफट' करती हुई मोटर साइकिल अदृश्य हो गई, और इधर इनके नेत्र भी धीरे धीरे बन्द हो गये—हां कुछ देर तक उनके मस्तिष्कमें वही ध्वनि 'फट् फट्' की और वही अङ्गरेज नवयुवक तथा तेजीसे भागती हुई उसकी मोटर साइकिल! यही दृश्य घूम २ कर चक्कर लगाने लगे और अन्तमें चक्कर भी घूमते २ ही अलोप हो गया और तब वे पूर्ण-रूपसे संज्ञा-हीन हो चुके थे। इसके बादका उन्हें मालूम नहीं कि क्या हुआ?

———————

चौदहवाँ परिच्छेद

मोटर साइकिलकी झपटसे गिरकर रामूबाबू बड़ी देर तक अचेतावस्थामें सड़कके किनारे पड़े रहे। एक नोकीले पत्थरसे टकरा जानेके कारण उनके माथेमें ढाई इञ्चका लम्बा घाव हो गया था, उसीसे रक्तस्राव अधिक हो जानेके कारण मस्तिष्कमें विशेष रूपसे दुर्बलता आ गई थी। बीसियों आदमी उस तरफसे गुजरे, कइयोंकी निगाह उनपर पड़ी, परन्तु किसी माईके लालने भी उठाकर बैठाना तो दूर रहा, उन्हें छुआ तक नहीं। कोई कहता पागल होगा, कोई सोचता शराब अधिक पी जानेके कारण इसकी यह दशा हुई; कोई कुछ और कोई कुछ—जो जीमें आता सोचता चला जाता।

पूरे सवा दो घण्टे बाद उस ओरसे मि० पिकाककी नीली कार आई। इस समय उसमें हरपाल और डा० वर्मा बैठे हुए थे। हरपालकी दृष्टि सड़ककी पटरीकी ओर गई, वह तुरन्त पहचान गया कि इस दुर्दशा में पड़ा हुआ यह आदमी रामूबाबूके सिवा दूसरा कोई नहीं है। यद्यपि रामूबाबूको पहलीबार देखते ही हरपालके मनमें उसके प्रति कुछ घृणासी पैदा हो गई थी तथापि शराफतके नाते उसने कार ठहरा ली। गया था, अपने पिताके लिये डाक्टरको बुलाने, परन्तु बीचमें यह अडंगा लग गया। कुछ भी हो, वह इस समय जो कुछ कर रहा था अपना कर्तव्य समझकर ही कर रहा था। कुलीसे बड़ा आदमी बन गया तो क्या हुआ? दिल तो उसके भी था?

हरपालके आदेशानुसार डाक्टरने वहींपर जल्दी जल्दी रामूबाबूका जख्म धोकर पट्टी बांध दी और फिर वे दोनों उसी कारपर बैठाकर उसे उसके घर पहुँचा आये। इन सब कामोंके करनेमें उन्हें मुश्किलसे पन्द्रह मिनट खर्च हुए होंगे, परोपकारी जीव ऐसे ही होते हैं—यह जानते हुए भी कि पिताकी अवस्था शोचनीय है, हरपालने अपने मूल्यवान समयके पन्द्रह मिनट रामूबाबूके लिये कुर्बान कर दिये। मि० पिकाक उधर मरण-शैय्यापर पड़े हुए प्रतिक्षण बड़ी कठिनाईसे अपना अन्तिम श्वास पूरा कर रहे हैं और ये पुत्र महाशय इधर परोपकारी काम करनेमें तल्लीन हैं। धन्य हैं वे लोग, जिनके मस्तिष्कमें ऐसे शुभ विचार कूट २ कर भरे हैं!

इस बीचमें मि० पिकाकको केवल एकबार ही होश आया था और उसीमें उन्होंने अपनी भाभी तथा उनके गर्भसे उत्पन्न बालक हरपालको जी भरकर देख लिया था, तभी उन्होंने अपना धर्म छोड़कर ईसाई होने के लिये माफी भी मांग ली थी और साथ ही उन्होंने उन दोनोंसे अब कहीं न जाकर वहीं रहनेका अनुरोध भी किया था, जिसे हरपाल और उसकी मांने सहर्ष स्वीकार कर लिया। इसके अतिरिक्त उन्होंने उसी दिन हरपालको अपने तमाम कारोबारका उत्तराधिकारी भी बना दिया। ये सब काम दो घण्टेमें करके वे सांसारिक समस्त झंझटोंसे एकदम विरक्त हो गये।

मि० पिकाकको अब अपने जीवित रहनेकी तनिक भी आशा नहीं रह गई थी और इसीलिये मरनेके पहले वे धन, व्यापार और सबसे अधिक अपनी पुत्री रंभाके आरामकी सुव्यवस्था करना चाहते थे—

उनकी इस कमीको हरपाल और उसकी मांने पूरी कर दिया और अब वे एकान्त रूपसे निश्चिन्त हो जीवनकी अन्तिम घड़ियां पूरी कर रहे थे। हरपालको पहली दृष्टिमें देख कर रही अन्दाजा लगा लिया था कि इससे किसी प्रकार अनिष्ट होनेकी सम्भावना नहीं। वे सन्तुष्ट थे उसके धीर, गम्भीर परिश्रमी चेहरेको देखकर, क्यों न हो? आखिर वह उन्हींका तो पुत्र था न?

कुछ क्षणोपरान्त उनकी दशा बिगड़ने लगी, उलटी सीधी सांसोंने आकर उन्हें इस संसारसे सम्बन्ध-विच्छेद करनेकी सूचना देना आरम्भ कर दिया। उनकी यह दशा देखकर रंभा, हरपाल और उसकी मां सब घबरा उठे। तभी रंभाकी सलाह लेकर हरपाल तुरन्त बाहर आया और ड्राइवरसे कार स्टार्ट कराके डाक्टरको बुलाने चल दिया। अपनी कोठीसे वहांतक पहुँचनेमें उसे मुश्किलसे दस मिनट लगे होंगे। डाक्टरको लेकर वापस आ ही रहा था कि रास्तेमें रामबाबूकी दुर्दशा देखकर बरबस ही उसे कार रोक लेनी पड़ी। पहले उसे ठिकाने लगा देना ही उचित समझा। पट्टी वगैरा बंधवाकर वह कारपर उसे उसके घर छोड़ आया!

कोठीपर पहुँचते ही डाक्टर साहबने मि० पिकाककी नाड़ी देखी, वह बड़ी मन्दगतिसे चल रही थी—छातीपर स्टेथिस्कोप लगाकर देखा, वहां भी कुछ नहीं था। बड़ी सावधानीसे शरीरके प्रत्येक भागको देखकर अन्तमें डाक्टर साहबने अपनी निराशापूर्ण दृष्टि हरपालके चेहरेपर डाली। हरपालने उन्हें अपनी ओर देखते हुए देखकर पूछा—

"क्यों क्या बात है डाक्टर?"

"बस अब इनके लिये आशा करनी फिजूल है।" कहते हुए

डाक्टरने अपना मुंह दूसरी ओर फेर लिया। स्थिति समझकर हरपालके नेत्रोंसे आंसू झलक आये। रंभा भी पास ही एक कुरसीपर बैठी हुई थी, डाक्टरकी बात वह भी सुन चुकी थी। अतः उसके मनमें भी पिताका प्रेम उमड़ आया और वह भी फूट २ कर रोने लगी। दोनोंको रोता देख बृद्धा ही भला कब चुप रह सकती थी—उसने भी सुबकी भरना आरम्भ कर दिया और देखते ही देखते कमरे भरमें एक कोहराम सा मच गया!

रोने पीटनेकी आवाज सुनकर बड़ी कठिनाईसे एक बार पिकाकने अपने नेत्र खोले और टूटे फूटे शब्दोंमें कहना शुरू किया—"रोओ नहीं ...मेरे...बच्चो!...आह! बेटा हरपाल...संभलकर काम करना... नौकरोंके...भरोसे पर...नहीं,...रंभाका ब्याह...कहीं...अच्छी जगह हिन्दू घराने.. में ही...करना...ओफ! मेरा...पाप...आज...मुझे... बेटा...बेटा मुझे...हिन्दू...रीतिसे ही...फूकना...बस अब—नहीं बोला जाता—भगवान—

जीवन लीला समाप्त हो गई। चले गये मि० पिकाक अपने जीवनकी ट्रेजिडीको यहीं खतम करके उस पुण्य धामको, जहां सुनते हैं धर्म और अधर्मका निबटारा किया जाता है। मुद्दतसे बिछुड़ी हुई भाभीसे बेचारे भली प्रकार मिल भी न पाये थे कि बीच ही में विकराल कालने यह बाधा डाल दी और पुनर्मिलनकी खुशी मनानेके बजाय सबको अथाह शोकमें डुबो दिया। हरपाल हीको क्या खबर थी कि कुलीगिरी करते २ बेचारेके सिरपर इतने बड़े व्यापारका भार आकर पड़ जायगा। विधाताके विधान को कौन मेट सकता है? पापीको पापका फल तो भोगना ही पड़ता है।

रामूबाबूके माथेपर चोट आजानेके कारण वह बेहोश हो गया था। डाक्टरके पट्टी बांधनेके थोड़ी देर बाद उसे पुनः होश आ गया; आंख खोलते ही उसे चन्द्रा और जमींदार साहब बैठे हुए दिखाई दिये। हरपालने कार द्वारा उसे कंचन-सदन ही पहुँचाया था इसलिये वे दोनों उसे सामने बैठे हुए मिल गये। नहीं तो शायद अब तक कोई उसकी बात पूछने वाला भी न होता। अपने भाईको ऐसी अवस्थामें देख चन्द्रा दुःखसे निढाल हो रही थी। रामूबाबूके आंख खोलते ही उसने सिरपर हाथ फेरते हुए प्यारसे पुकारा—"भैय्या!"

बहनकी आवाज सुनते ही उसने धीरेसे अपनी आंखें खोल दीं और उसकी ओर देखते हुए बोला—"कोई चिन्ताकी बात नहीं है बहन! एक अंगरेज युवककी मोटर साइकिलकी झपटसे गिरकर माथेमें चोट आ गई है, और कोई बात नहीं।"

चन्द्रा बोली—"अंधा था क्या वह?" साथ ही आश्चर्य भरी आवाजमें जमींदार साहबने पूछा—"क्या कहा? एक अंगरेज युवककी मोटर साइकिलसे—"

"जी हां, उसने जान-बूझकर ही मेरे ऊपर साइकिल चढ़ानी चाही थी"—कहते हुऐ रामूबाबू उठकर बैठ गये और पुनः कहना शुरू किया—"यह वही अंगरेज था जिसका मिस जिंजर—"

मिस जिंजरका नाम पूरा होनेसे पहले ही जमींदार साहब बोल पड़े—"अच्छा, अच्छा, मैं समझ गया—वह अब हमसे भी बदला लेना चाहता है।"

"हां, मि० पिकाकके साथ वह हमें भी इस दुनियांसे उठा देना चाहता है।" उसने उत्तर दिया।

कहीं चन्द्राको वे सब बातें मालूम न होजाये, इस खयालसे जमींदार साहबने उस समय रामूबाबूको वहांसे टाल देना ही उचित समझा। आंख का इशारा पाकर रामूबाबू कुछ बातें बना कर वहांसे चलते बने। उसके जानेके बाद चन्द्राने जमींदारके गलेमें बाहें डालते हुए पूछा—

"वह कौन अंगरेज है, जो इस तरह आप लोगोंके पीछे पड़ा हुआ है?" बातकी खाल निकाले बिना चन्द्रा नहीं रहेगी ; यह बात जमींदार साहबको पहलेसे मालूम थी, अतः कुछ सोचकर उन्होंने जवाब दिया —"अरे कोई महत्वपूर्ण बात नहीं है, व्यापारमें ही कुछ ऐसे लोगोंसे पाला पड़ जाता है कि जिनसे उलझ कर बड़ी २ कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है।

"परन्तु यह मिस जिंजर—नहीं शायद जिंजरकी बोतलकी तरह ही कुछ उसका नाम होगा—ये मिस कौन है? उसका इससे क्या संबन्ध है?" उसने पूछा।

"उंह होगी कोई—हमें उससे क्या मतलब?" जमींदार साहबने झुंझला कर उत्तर दिया और फिर बातका रुख बदलने के ढंगसे बोले —"तुमने उस दिन क्या कहा था? छेदीलालकी बहनसे रामूकी शादीके लिये बातचीत पक्की करनेको कहती थी ना?"

"हां, कहा तो था आपसे, परन्तु आपने उस ओर कुछ ध्यान ही नहीं दिया"—कुछ अनमनी सी होकर चन्द्राने उत्तर दिया। इस पर जमींदार साहबने कहा—

"अच्छा जाओ, किसीको भेज कर जरा छेदीलालको बुला लो। आज उससे बातचीत करेंगे"—बात जी लगती देख, चन्द्रा तुरन्त उठ कर बाहर गई और ऐक नौकरको छेदीलालके घर भेज कर पुनः कमरेमें आकर जमींदार साहबके पास बैठ गई।

थोड़ी देरमें छेदीलाल भी आ गया। अब वह पहलेसे बहुत दुबला और कमजोर हो गया था। उसकी आंखें भीतरको घंस गई थीं, रंग पीला पड़ गया था और गाल भी कुछ सूख से गये थे—बीचमें दोनों तरफ गढ्ढा हो गया था। देखनेसे मालूम पड़ता था कि उसका जीवन स्वयं उसके लिये भार स्वरुप हो गया था। जीवनमें एक करारी ठोकर उसे लगी और इसीमें वह संभल न सका। वह आया और चुपचाप कमरेमें एक ओर खड़ा हो गया—उसे देखते ही जमींदार साहब बोले—"आओ आओ छेदीलाल, यहां आकर बैठ जाओ, आज तुमसे किसी खास मामले पर बातचीत करनी है।"

छेदीलाल हैरान था कि आज क्या बात है, जो जमींदार साहब उस पर इतना मेहरबान हो रहे हैं, पहले तो कभी ऐसे ढङ्गसे पेश नहीं आये, जरूर कुछ दालमें काला है; यह सोच कर वह कुछ संभल-सा गया और पास पड़ी हुई एक मचिया पर बैठ गया।

"तुम्हारी कोई बहन भी है न ? शायद उसका नाम—" कहते कहते जमींदार साहब उसका नाम सोचने लगे। छेदीलालके मनमें कुछ खटका, पर वह झिझका नहीं, तुरन्त ही उनकी बातको पूरी करता हुआ बोला—"कृष्णा है।" जमींदार साहबने कहा—

"हां मैं उसीका जिकर कर रहा था। सुना है वह जवान हो गई है, कहीं उसकी शादीका इन्तजाम क्यों नहीं करते, घर पर बिठाकर कब तक खिलाते रहोगे ?"

"लोगोंसे कह रखा है सरकार ! कोई अच्छा वर मिले तो उसका विवाह कर दूं।" छेदीलालकी बातको अपनी जोरदार हंसीमें दबाते हुए जमींदार साहबने कहा—

"अरे पगले हो गये हो ? दूर क्यों जाते हो, यहां अपने गांवमें योग्य वरोंकी कमी है क्या ? कितना अच्छा लड़का है—सुन्दर, सुशील, पढ़ा-लिखा और कमाऊ !"

"आप किसके बारेमें जिकर कर रहे हैं ?" छेदीलालने पूछा।

"अरे और कौन होगा उसके मुकाबलेमें इतना पढ़ा हुआ इस गांवमें"—जमींदार साहबने बातको स्पष्ट करते हुए कहा—"मैं इनके भाईके बारेमें कह रहा हूँ। कितने अच्छे स्वभावका है वह लड़का, तुम तो जानते ही हो उसे ?"

"मैं खूब अच्छी तरह जानता हूँ उनको"—भृकुटी चढ़ाते हुए उसने उत्तर दिया।

"फिर क्यों नहीं जल्दी ही यह काम कर डालते ?" उन्होंने पूछा।

"कैसा काम सरकार ?" खीजके उसने कहना आरंभ किया—"आप किसके साथ मेरी बहनकी शादी कराना चाहते हैं ? जिसकी बहन बहुत दिनों तक मेरे प्रेमकी भिखारिन रह चुकी है, उसीके भाईके साथ मैं अपनी बहनकी शादी कर दूं ? जिसका बाप मुद्दत तक मेरी दयाका पात्र बना रहा और मेरी सहायता ले लेकर अपना काम चलाता

रहा क्या उसीके बेटेको मैं अपनी बहन सौंप दूं? यह कभी नहीं हो सकता।"

छेदीलालका मस्तक क्रोधके मारे इस समय घूम रहा था, वह आपेसे बाहर होकर जो नहीं कहना चाहता था, उसे भी वह कहता ही चला गया। भेद खुलनेसे पहले तो चन्द्रा डर गई, परन्तु फिर साहस बटोरती हुई वह बोली—

"चुप कमीने कुत्ते! मालिकके सामने मुंह जोरी करते तुझे शर्म नहीं आती।"

"कुतिया तू, कमीना तेरा बाप!" छेदीलालने जोशमें आकर कहा—"शर्म तुझे आनी चाहिये या मुझे—एक खसमको छोड़कर धन के लोभसे दूसरेके घर चली आई और यहां आकर भी तेरे मनकी प्यास बुझ न सकी, दगाबाज कहींकी।"

अपनी स्त्रीकी शानमें ऐसी बेहूदा बकवास जमींदार साहब भला कब सुन सकते थे—वे एक बारगी ही क्रोधमें उन्मत्त हो उठे और उसी झोंकमें उन्होंने धड़ाकसे एक चांटा छेदीलालके गालपर रसीद कर दिया। चांटा लगते ही छेदीलाल तिलमिला उठा, मामला अब उसकी सहन शक्तिसे बाहर हो चुका था। अपनी जिंदगीसे तो वह बेजार था ही, पास पड़ी हुई अंगारची उठाकर उसने जमींदार साहबके पेटमें भोंक दी। अंगारची कलेजे तक पूरी उतर चुकी थी—एक आह करके जमींदार साहब भूमि पर लेट गये। उनकी यह दशा देखते ही चन्द्रा "बचाओ बचाओ" चिल्लाती हुई कमरेके बाहरकी ओर भागी। छेदीलाल पैंतरा बदल कर चाहता था कि एक ही बारमें उसका भी

काम तमाम कर दे कि इतनेमें दीवानजी दौड़ते हुए कमरेमें चले आये। उन्हें देखकर वह दूसरे दर्वाजेसे कमरेके बाहर निकल कर कूदता-फांदता हुआ बड़ी तेजीसे अपने घरकी ओर भाग गया। घर पहुँच कर कुछ सुस्तानेके लिये एक क्षण वहां ठहरा ही था कि इतनेमें मकानके भीतरसे आवाज आई—

"बिना भैयाकी मर्जीके मैं कुछ नहीं कह सकती।" आवाज कृष्णा की थी—इसके साथ ही एक जोरदार तथा भारी आवाज सुनाई दी—"ओह तुम अपने भैयाकी चिन्ता न करो उसे तो जमींदार साहब राजी कर लेंगे।" यह आवाज रामूबाबूकी थी।

उस समय अपने मकानमें रामूबाबूको देख एकबार फिर छेदीलाल का खून उबल पड़ा। वह एक झटकेमें ही दर्वाजा खोलकर रामूबाबूके सामने जाकर खड़ा हो गया और देखते २ हाथमें थामी हुई अंगारची उसके कलेजेमें उतार दी। दूसरे क्षण रामूबाबू भी पृथ्वीपर तड़पता दिखाई देने लगा। भयसे कृष्णाकी चीख निकल गई—"आह, यह क्या किया भैया! वह देखो, बाहर कितने लोग भागे चले आरहे हैं।"

"घबरा नहीं कृष्णा, किसी आपत्तिमें फंसनेसे पहले मैं तुझे भी उस परमपिता परमात्माकी गोदमें सुलाये देता हूँ।" कहते कहते उसने उसका भी काम तमाम कर दिया। उसी क्षण एकबार फिर उसका हाथ ऊंचा उठा और वही अंगारची इस बार स्वयं छेदीलालके कलेजेमें उतरी हुई थी। दर्वाजे पर लोगोंकी भीड़ इकट्ठा थी और कमरेमें तीन २ लाशें तड़प रही थीं।

पन्द्रहवां परिच्छेद

जमाना बीत गया। दून एलेक्ट्रिक वेल्डिङ्ग कम्पनीके संस्थापक विलासितामें फंसकर अपनी जानसे भी हाथ धो बैठे, साथमें मिस जिंजर को भी ले डूबे। वह वास्तवमें निरपराध कही जा सकती है, किन्तु तीस हजारके लोभमें फंसकर वह चालाक, गुण्डोंके हथकंडेसे अपनेको न बचा सकी और अन्तमें अपने ही प्रेमीके हाथोंसे छूटी हुई गोली खाकर उसे उसके प्रति विश्वासघात करनेका फल मिल गया! उस घटनाके पश्चात् उस अंगरेजका कहीं पता न चला, पुलिसने उसे ढूंढ़ निकालनेकी भरपूर चेष्टा की, पर इसमें वह सफल न हो सकी। बहुत सम्भव था रामूबाबू तथा जमींदार साहबसे बदला लेनेके लिये उसे एक बार फिर प्रकट होना पड़ता, परन्तु उसकी इस कमीको छेदीलाल पूरी कर चुका था, अतः प्रकट होनेकी उसे जरूरत ही न पड़ी। जमींदार, रामूबाबू और कृष्णा— इन तीनोंको खत्म करके छेदीलाल स्वयं भी इस दुनियांसे चलता बना। फिर कोई झगड़ा ही शेष नहीं था, केवल चन्द्रा रह गई थी अपने पापका फल भुगतनेके लिये।

छेदीलाल द्वारा उपरोक्त हत्या-काण्ड होनेसे पांच दिन पहले ही कुमारसिंहको बाहर भेज दिया गया था। वह इस समय बहादुरपुरकी जमींदारीका काम संभाल रहा था। वहांके कुछ किसानोंपर लगानका रुपया अधिक चढ़ गया था—कारिन्दे उनपर बुरी तरहसे सख्ती कर रहे

थे, परन्तु फिर भी लगान वसूल नहीं हो रहा था, प्रत्युत कारिन्दोंके कठोर स्वभावसे ऊबकर वे लोग बिगड़ उठे थे। बहादुरपुरकी प्रजा कोई आन्दोलन खड़ा कर बैठे इसी ख्यालसे दीवान विजयसिंहने सावित्रीके बहुत मना करनेपर भी कुमारको वहांकी देख-भाल करनेके लिये भेज दिया। कुमारको अपनी इच्छाके विरुद्ध पुष्पाको रोती हुई छोड़कर वहां जाना पड़ा—उसके पहुँचते ही बहादुरपुरका वातावरण पुनः शान्त हो गया। अपनी बुद्धिमत्तासे बहुत शीघ्र ही उसने वहांके भड़के हुए किसानोंपर काबू पा लिया।

पांचवे रोज उसे जमींदार साहबकी हत्याका पता चला, अतः वह वहांके किसानोंको समझा बुझाकर पुनः कुन्दनपुर वापस आ गया। चन्द्रा भी अब पहले जैसी चन्द्रा नहीं रह गई थी। जमींदारके मरनेके बाद इन पांचों दिनोंके भीतर ही उसके स्वभावमें पृथ्वी-पातालका अंतर हो गया था। अब उसके स्वभावमें न तो वह चिड़चिड़ापन ही रह गया था और न वह अब नौकरोंपर अधिक बिगड़ती ही थी। भाई, बाप और पति—बस, इन्हींके ऊपर तो वह फूली फिर रही थी, अब इन तीनोंमेंसे कोई भी नहीं था। उसका बृद्ध पिता, अपने पुत्र तथा सम-वयस्क जमींदार बाबूकी हत्या होनेसे बहुत पहले ही इस संसारको छोड़ चुका था। अब वह कूदती भी तो किसके बलपर? सारी जमींदारीका काम दीवानजीके हाथोंमें था। उनके विरुद्ध कोई काम करनेकी उसमें सामर्थ्य कहां थी? चुपचाप मन मारकर उसे समयकी प्रतीक्षा करनी पड़ी। कुमार भी सीधे स्वभावका आकर वहीं रहने लगा।

× × ×

दो महीने बाद——

रातके साढ़े नौ बजेका समय होगा, सब लोग खा-पीकर अपनी २ चारपाईपर आराम कर रहे थे। दीवान विजयसिंह भी भोजन करके पलङ्गपर पड़े हुए खमीरा तम्बाकूका आनन्द ले रहे थे, उनके सामने ही सावित्री एक पीढ़ेपर बैठी पान लगा रही थी। सावित्रीकी किसी बातने दीवानजीको बड़ी उलझनमें डाल दिया था ? वे इस समय गम्भीर मुद्रा बनाये उसीके बारेमें सोच रहे थे। सावित्री उनकी बात सुननेके लिये बड़ी उत्सुक-सी प्रतीत हो रही थी—उसकी अपलक दृष्टि इस समय भी दीवानजीके चेहरेपर जमी हुई थी। कुछ समयके बाद दीवानजी एक निःश्वास छोड़ते हुए बोले—

"नहीं नहीं, यह बात मेरे जीते जी कदापि नहीं हो सकती। हम क्षत्रिय और वह सुनार—ओफ, कितना अन्तर है हमारी उनकी जातिमें! लोग क्या कहेंगे ये सम्बन्ध हो जानेपर—जानती हो ? नहीं, तुमने इसे जाननेकी कोशिश ही नहीं की, पुत्र ममतासे प्रेरित होकर तुमने अपनी मान-मर्यादाको भी भुला दिया—छिः"

सावित्रीको उनके उत्तरसे सन्तोष नहीं हुआ वह साहस करके बोली—"लोग क्या कहेंगे सम्बन्ध हो जानेपर ? आखिर इसमें हानि ही क्या है ? उसके पिताके मरनेके बाद आप हीके सिरपर उसके विवाह आदिकी जिम्मेदारी है, फिर यदि आप इच्छानुसार सुयोग्य वर देखकर उसका विवाह कर दें तो इसमें लोगोंको क्या एतराज हो सकता है ? और फिर मेरा कुमार भी उससे किसी बातमें कम थोड़ा ही है।"

"ओ, तुम अभी इसके नतीजेसे बिलकुल अनभिज्ञ हो"—दीवान-

जीने तकियेके सहारे उठते हुए कहा--"कुमारकी पुष्पाके साथ शादी हो जानेपर सारा गांव एक स्वरसे चिल्ला उठेगा कि धन-सम्पत्तिके लोभमें दीवानजीने अपने लड़केके साथ जमींदारकी लड़कीका विवाह कर दिया —ना ना, मुझसे यह बदनामी कभी नहीं सही जायगी।"

"परन्तु उन दोनोंमें प्रेम जो है"—सावित्रीने गुत्थी सुलझाते हुए कहा—"उनका प्रेम पराकाष्ठाको पहुँच चुका है। दोनोंके परस्पर विछोह होनेका क्या परिणाम निकलेगा, जानते हो? सम्भवतः दोनों ही अपनी जानोंपर खेल जायेंगे और फिर दोनों ही से हाथ धोना पड़ेगा।"

दीवानजी बोले-"कुछ भी हो, मैं इस सम्बन्धके लिये बिल्कुल सह-मत नहीं हूं, लोगोंकी जली-कटी बातें सुननेकी मुझमें तनिक भी सामर्थ्य नहीं। देखने सुननेवाले क्या जान सकते हैं, इनके प्रेमके बारेमें? वे लोग उनके इस अन्धे प्रेमकी पर्वाह नहीं करेंगे। वे ये भी नहीं देखेंगे कि सम्बन्ध विच्छेद हो जानेपर इन दोनोंकी जानोंका खतरा है। उनकी दृष्टि सर्वप्रथम मेरे कलुषित विचारोंकी तरफ जायेगी। इतनी विशाल सम्पत्ति हड़पनेके लिये ही मैंने यह सम्बन्ध किया है, यही विचार सब गांववालोंके मनमें उत्पन्न हो जायेंगे। अपने स्वर्गीय मालिकके प्रति मैंने विश्वासघात किया—यह बात कोई भी कहे बिना नहीं चूकेगा, लोग रास्ता चलना भी दूभर देंगे।"

"बड़े खेदकी बात है लोगोंसे डरकर आप अपने पुत्रकी भी पर्वाह नहीं कर रहे हैं। पुत्रकी ममताका आपके हृदयमें, लोक-निन्दाके आगे तनिक भी स्थान नहीं। मेरे लिये पुष्पा और कुमार दोनों बराबर हैं,— दोनोंमें किसी एकके आत्मघात करनेसे ही मेरे हृदयको भारी धक्का

पहुँचेगा। मेरी समझमें नहीं आता, आखिर सब कुछ जानते हुए भी आप लोकनिन्दाको इतना महत्व क्यों दे रहे हैं? क्या गांववालोंसे डर कर हमें इन दोनोंको ही भुला देना ठीक होगा?"

"हां, मेरी दृष्टिमें यही ठीक होगा—बस इससे आगे और कुछ कहनेकी तुम्हें जरूरत नहीं।" कहते हुए दीवानजी लिहाफसे मुंह ढांपकर पड़ रहे।

सावित्री उनके स्वभावसे भलीभांति परिचित थी। वह जानती थी कि दीवानजी अपनी हठके पक्के हैं, एक बार जिस बातसे इनकार कर देते हैं फिर उसमें 'हां' कहना वे आज तक सीखे ही नहीं थे। सावित्री को अधिक कुछ कहनेका साहस नहीं हुआ वह बेचारी मन मारकर चुप हो बैठ रही। 'हरि इच्छा बलवान' सोचकर उसने पानदान संभालकर रक्खा और चुपचाप अपनी चारपाईपर आके लेट रही।

उसी रातको दूसरे कमरेमें———

"सुनी कुमार, तुमने अपने पिताजीकी सारी बातें?"

"हां पुष्पा।" कुमारने उदास मनसे उत्तर दिया।

"फिर अब क्या करनेका विचार है? बदनामीके भयसे वे अब राजी हो नहीं सकते, और उनके विरुद्ध मासीजीसे किसी प्रकारकी आशा नहीं की जा सकती है। क्या किया जायेगा? अब कैसे होगा? कुछ समझमें नहीं आता।"

कुमार शोकावस्थामें बड़ी देर तक न जाने क्या २ सोचता रहा। उसे निरुत्तर देख पुष्पाने पुनः पूछा—"क्या सोच रहे हो कुमार? इसके सिवा कोई और भी तरकीब है क्या?"

"बस और कोई तरकीब नहीं सूझ पड़ती"–उसने निःश्वास छोड़ते हुए उत्तर दिया, "यह आखिरी तरकीब थी—अब तुम मुझे भूल जानेकी कोशिश करो पुष्पा, बस यही तरकीब शेष है। बिना मुझे भुलाये काम न चलेगा—मेरी याद, तुम्हारे भावी पतिके प्रेममें बाधा पहुचायेगी, इस लिये मुझे भूल जाओ।"

"चुप रहो कुमार, ये बात मेरे हृदयमें शूलके समान चुभती है—कहते हुए तुम्हें तनिक भी संकोच नहीं होता। कौन मेरा पति? किसके साथ मेरा विवाह होगा? अधिकार ही किसको है? तुम शायद नहीं जानते होगे परन्तु मुझे पहलेसे ही तुम्हारे पिताजीके निर्णयका ज्ञान था। मैं उनके स्वभावसे भलीभांति परिचित हूँ—वे कभी इस सम्बन्धसे राजी न होंगे यही सोच मैंने सारा प्रबन्ध पहलेसे ही कर लिया है।"

"कैसा प्रबन्ध? क्या आत्महत्या करनेका?" उसने पूछा।

"नहीं, हम मरेंगे क्यों?" पुष्पाने जवाब दिया—जब इस दुनियाके लोग हमारे प्रेमका जरा भी मूल्य न लगाकर, हमारी जानें लेनेसे भी नहीं चूकते तो फिर हम ही क्यों व्यर्थ अपनी जान देने लगे। हमें भी अब कटिबद्ध होकर मैदानमें उतर आना चाहिये—डरनेसे नहीं काम चलेगा कुमार! दुनियाकी कोई भी शक्ति हमें अलग नहीं कर सकती।"

पुष्पा जोशमें कहती चली गई, कुमार उसके मुख-मण्डल पर छाये हुए उत्तेजनाके भावोंको देखकर स्तब्ध रह गया। रक्तवर्ण कपोलोंका रंग और भी तीव्र हो उठा था, आजसे पहले उसे किसीने भी इतना उत्तेजित होते हुए नहीं देखा था। समाज उनकी शुभ-कामनाओंके पूरी होनेमें बाधक बन रहा था इसीसे वह समाज ही नहीं, वरन् इस

दुनियासे घृणा करने लगी थी। कुमारने उसे शान्त करते हुए डरते डरते पूछा—"फिर अब क्या करनेका निश्चय किया है तुमने ?"

"ये बात जोरसे कहनेकी नहीं है—यहां आओ, अभी सब मालूम हो जायेगा।"

कुमार कठपुतली की तरह उसके पीछे २ चल दिया। पुष्पा उसे दबे पांव अपने कमरेमें ले गई और अन्दर जाकर कमरेका दर्वाजा बन्द कर लिया। बड़ी देर तक दोनोंमें न जाने क्या-क्या बातें होती रहीं, जिसे कोई भी न जान सका। ठीक जब कि बड़े कमरेकी घड़ीने साढ़े ग्यारह बजाये। वे दोनों कमरेसे बाहर निकले परन्तु यह क्या ? इस समय तो उनकी शकल व सूरत वस्त्रादि सभी कुछमें पृथ्वी पातालका अन्तर था। कुमार एक फटा हुआ मोटे खद्दरका कुर्ता और एक मैली-सी धोती पहने हुए था। सरसरी तौर पर देखने वालोंमें से कोई भी इस समय उसे साधारण किसान कह सकता था और पुष्पा तो इस समय एक दिहाती गड़ेरियेकी लड़की बनी हुई थी। मोटे खद्दरका बना हुआ ऊंची टांगोंका लहंगा—मैली-सी चादरसे सारा शरीर ढांपे हुए, एक हाथमें कुछ आवश्यक वस्तुओंकी गठरी लिये उसके पीछे २ जारही थी।

वे दोनों जीनेसे नीचे उतरे और पिछले दर्वाजेसे निर्विघ्न बाहर निकल गये। थोड़ी दूर जाने पर ही उनकी छाया उस अनन्त अन्धकार में विलीन हो गई, कोई भी उन्हें वहांसे जाते हुए न देख सका—बहुत दूर कुत्तोंके भूंकनेकी आवाज अवश्य सुनाई दे रही थी—इसके सिवा और कुछ भी नहीं।

सोलहवां परिच्छेद

कृष्ण-पक्षकी अंधियारी चारों ओर झुकी हुई थी, नीलाकाश पर झिलमिलाते हुए लघु तारागण अपनी 'टिम्-टिम्' ज्योति द्वारा नभ-मण्डलको आरंजित कर रहे थे। काली-निशाका दूसरा पहर बीत चुका था, ऐसे ही समय, स्तब्ध वायु मण्डल को चीरती हुई एक भूरे रंगकी मोटर अपनी द्रुत-गतिसे सहारनपुर रोड पर दौड़ी चली जारही थी। दो व्यक्ति मोटरकी पिछली सीट पर बैठे हुए थे, ड्राइवर अगली सीट पर बैठा हुआ मोटर चला रहा था—वह अपनी धुनमें मस्त था, परन्तु अपने काममें चौकस! रह २ कर उसकी शंकित दृष्टि पीछे बैठी हुई सवारियोंकी ओर घूम जाती थी; कई विचार उसके मस्तिष्कमें उठे, परन्तु किसी निश्चित सीमा तक पहुँचनेके पहले ही नई विचार-धारामें विलीन हो गये—उसकी मनोवृत्ति चंचल हो उठी, वह मन ही मन सोचने लगा—

"ये कहींसे भागे हुए आसामी तो नहीं है! लच्छन तो कुछ ऐसे ही हैं, पच्चीस रुपया भाड़ा मांगने पर भी तो इन्होंने कुछ एतराज नहीं किया, किराया पेशगी मांगा झट पूरी रकम निकाल कर दे दी। इतनी जल्दी की वहांसे चलनेमें, मानों देहरादून इन्हें खानेको दौड़ा आरहा हो—अभी इन दोनोंकी उमर भी कितनी होगी? यही कोई उन्नीस बीस वर्षकी, देखने से तो दोनों लड़के शरीफ मालूम देते हैं, दोनों ही कोट पतलून डाटे हुए हैं—जान पड़ता है किसी कालेजके स्टूडेन्ट होंगे।

मगर—कपड़ोंमें एक भेद है। कोट, पतलून, कमीज, नेकटाई सब कुछ दोनोंका ठीक एक-सा है पर, बड़ेके सिर पर टोप और छोटेके सिर पर पगड़ी ; यह कैसा अन्तर ? पगड़ीमें स्त्रीके सिरके बाल भी तो ढक सकते हैं। वस्त्रोंका आवरण यदि अलग कर दिया जाय तो क्या यह छोटा लड़का एक सुन्दर युवतीके रूपमें नहीं बदल सकता ? यह भ्रम नहीं, सत्य ही होगा।"

इस सन्देहसे मन चंचल हो उठा, वास्तविकताका पता लगानेका उसने दृढ़ निश्चय कर लिया। दूसरे क्षण मोटरकी चाल धीमी होने लगी और कुछ आगे जाकर एकदमसे रुक गई, जान पड़ा मानों इञ्जिनमें कुछ खराबी आगई है। पीछे बैठी हुई सवारियोंमेंसे बड़े लड़केने पूछा—"क्यों भाई क्या बात है ?"

"देखता हूँ, मालूम होता है पेट्रोल-पाइप बन्द हो गया है।" कहता हुआ ड्राइवर मोटरसे नीचे उतर कर इंजिनमें न जाने क्या खुटर पुटर करने लगा। सड़कके दोनों तरफ पहाड़की ऊंची २ चोटियां खड़ी थीं, काली रातमें स्तब्ध जंगल सांय-सांय करता हुआ बड़ा भयानक मालूम हो रहा था। बड़ा लड़का ड्राइवरकी सहायता करनेके लिये नीचे उतरने लगा, परन्तु छोटे लड़केने उसके कंधेसे चिपटते हुए धीरेसे कहा—"अकेली छोड़कर नीचे न उतरो कुमार, मुझे बड़ा डर लग रहा है—देखो न, चारों तरफ कितना भयानक जंगल खड़ा हुआ है।"

उसी प्रकार धीमे स्वरमें बड़े ने उत्तर दिया—"डरो नहीं पुष्पा, आज तो पहली ही रात है—जी छोटा करनेसे कैसे काम होगा ? मेरे जीते जी तुम पर कोई आपत्ति नहीं आ सकती, तुम यहीं बैठी रहो, मैं देखता हूँ शायद मेरी सहायतासे ड्राइवर जल्दी..."

इतने ही में ड्राइवर नीचे खड़े हुए पुकारा—"आप दोनोंमें से एक साहब यहां आजायें जरा—पेट्रोलकी नली साफ करनेके लिये मैं पम्पकी हवा भरता हूँ, आप इसे केवल पकड़ लें।" "पुष्पाको पिछली सीट पर अकेली बैठी हुई छोड़ कर कुमार नीचे उतर गया और ड्राइवरके पास जाकर पूछा बताओ क्या करना है ?"

आप इस नलीको थाम लें मैं पम्प लाकर हवा मारता हूँ" बड़ी शीघ्रतासे कुमारके हाथमें एक नली थमा कर वह पिछली सीटकी तरफ गया, जान पड़ता था मानों जल्दी मोटर चालू करनेकी उसे उत्कट अभिलाषा है। रातकी अंधियारीका यह हाल था कि पास खड़ा आदमी भी दीखना कठिन हो रहा था—कुमार तनिक भी समझ नहीं सका कि ड्राइवरकी मंशा क्या है ? सहसा पुष्पाकी आवाज सुनाई दी —"बदमाश कहींके !" और दूसरे क्षण वह कूद कर मोटरसे नीचे खड़ी थी। ड्राइवर भी हठात् ही चिल्ला पड़ा—

"ओ मैं समझा। आप दोनों कहीं से भाग कर आरहे हैं"

पुष्पा भाग कर कुमारके पास चली गई। कुमारने नली छोड़ते हुए पूछा—"क्यों क्या बात है ?" वह कुछ न बोली चुपचाप खड़ी रही। ड्राइवर भी इतनेमें वहां आ गया था, आते ही पूछा—"क्यों मिस्टर, कहांसे भगाकर लाये हो ?"

ड्राइवरकी बात सुनकर कुमार और पुष्पा पहले तो सकपका गये, दोनोंके मनमें लगा मानों वह उनके वास्तविक भेदको भली भांति जानता है, परन्तु फिर शीघ्र ही कुमारने अपना बिखरा हुआ साहस बटोर कर उसे उत्तर दिया—"क्या बात करते हो जी ! कौन किसको भगाकर लाया

है ? हम लोगोंको तुम क्या समझे हुए हो ? आदमीको पहचानते भी नहीं।"

ड्राइवरके पैशाचिक अट्टहाससे एक बार सारा जंगल और पहाड़ गूंज उठा, उसने आगे बढ़कर कुमारके कंधेपर हाथ धरते हुए कहा—"सात सालसे मैं आदमियोंको पहचाननेका ही काम कर रहा हूँ जनाब ! और इसीलिये मुझे आपलोगों को पहचानने में भी कुछ देर नहीं लगी, पहले मुझे आपके इस खूबसूरत साथी पर संदेह ही था, मगर अब मैंने इसकी छाती टटोल कर पता लगा लिया है कि ये…"

"ओ, बदमाश ! कमीने !!" क्रोधके मारे कुमारका सारा शरीर जलने लगा। अब उसे पुष्पाके नीचे उतरनेका कारण मालूम हुआ, ड्राइवरसे इस शैतानीका बदला लेनेके लिये वह एक बारगी ही उन्मत्त हो उठा ; उसने मन ही मन उसकी और अपनी ताकतका मुकाबला किया ! ड्राइवर हृष्ट-पुष्ट, विशाल शरीरका पंजाबी था, अतः मल्ल-युद्धमें उसे पराजित करनेकी शक्ति तो कुमारमें थी नहीं—हां एक तरकीब थी, उसीसे वह ड्राइवर पर विजय प्राप्त कर सकता था। कुछ सोचकर कुमार उस समय कुछ न बोला और चुपचाप खड़ा होकर ड्राइवरकी हरकतोंको देखने लगा।

ड्राइवर इंजिनका बौनेट बन्द कर रहा था, उसे बन्द करके वह खड़ा हो गया और बड़ी लापर्वाहीसे बोला—"इस आपत्तिसे बचनेकी एक तरकीब है मिस्टर ! अगर तुम मानों तो कहूँ—मैं चाहता हूँ कि अपनी इस मन मोहिनी को थोड़ी देरके लिये मेरे हवाले कर दो, मैं एक बार केवल एक बार अपनी प्यास बुझा कर……"

अब कुमारकी सहन-शक्ति सीमासे परे पहुँच चुकी थी। पुष्पाकी शान में वह धूर्त ऐसे अपशब्द कह जाये—ये भला उसके जीते जी कब संभव हो सकता था। पिछली सीटके नीचे जहां ये दोनों बैठे हुए थे 'टायर-लीवर' नामका एक डण्डा-रूपी लोहेका भारी औजार पड़ा हुआ था' उसीको कुमार झपट कर उठा लिया और दोनों हाथसे कसके इतने जोर से उसकी खोपड़ी में मारा कि वह चकरा कर वहीं बेहोश होकर गिर पड़ा।

पुष्पा यह सब दृश्य देखते ही एकबारगी ही कांप उठी। ऐसी भयानक परिस्थितिका सामना उसे आज तक नहीं करना पड़ा था—कुमार भी क्षण भरके लिये स्तब्ध खड़ा रह गया। कुमारको चुपचाप खड़ा देखकर पुष्पा बोली—"अब क्या होगा कुमार! मोटर कौन चलायेगा?"

इससे पहले कि कुमार उसे कुछ जवाब दे, उन्हें देहरादूनकी तरफसे कोई चीज आती हुई दिखाई दी—दूरसे दो बत्तियोंकी चमकदार रोशनी स्पष्ट दिखाई दे रही थी, अतः आनेवाली चीज मोटर या लारीके सिवा दूसरी चीज नहीं थी।

दोनों किंकर्त्तव्य विमूढ़ बने खड़े हुए देख रहे थे, कुछ करते धरते बन न पड़ रहा था। आनेवाली रोशनी बिलकुल पास आचुकी थी, मुश्किलसे कोई दो सौ गजका फासला रह गया था। कुमारको ऐसा मालूम हुआ मानों ड्राइवर मर चुका है और वह अब शीघ्र ही पकड़ लिया जायगा—ओह, पुलिसवाले उसे जेलकी तंग व अंधेरी कोठरीमें ठूंस देंगे, और तब, तब न जाने उसे कालापानी भेज दिया जाय—

जेलकी यातनासे भयभीत होकर वह एक क्षण भी वहां न ठहर सका और बड़ी शीघ्रतासे भाग कर जंगलकी बड़ी बड़ी झाड़ियोंमें अलोप हो गया।

उधर पुष्पाका भी यही हाल था—वह सोच रही थी, यदि ड्राइवर मर गया होगा तो कुमारका क्या हाल होगा ? पकड़े जाने पर वह अवश्य जेल भेज दिया जायगा—ओफ' मेरे ही कारण तो उसने ऐसा किया, फिर मैं—मैं इस समय उसकी क्या सहायता कर सकती हूँ ? जीते जी तो मुझसे सब न देखा जायगा। बदनामी भी तो कितनी होगी—लोग कहेंगे कि जमींदारकी लड़की के कारण कुमारने ऐसा किया छिः—इससे तो मर जाना अच्छा है।

यह सोचते २ पुष्पा एकदमसे अधीर हो उठी—शीघ्र ही वहांसे भागनेके लिये उसने कुमारको सम्बोधित करते हुए कहा—"वे लोग लोग सिरपर आ गये हैं क्या सोच रहे हो कुमार ? भागते क्यों नहीं ? जब पकड़ ही लिये जायेंगे तब क्या कर सकोगे ?"

उपरोक्त बातें उसने कुमारसे कही थीं, किन्तु वहां था ही कौन जो उसकी बात सुनता ? उत्तर न पाकर पुष्पा एक बारगी ही घबरा उठी ; उसे देखनेके लिये उसने बड़ी शीघ्रतासे मोटरके चारों ओरका चक्कर लगा डाला, पर वह होता तो मिलता भी, जब था ही नहीं तो कैसे मिलता ? निराश होकर वह स्वयं ही आत्म रक्षाके लिये जङ्गलमें घुसकर आनेवालोंकी दृष्टिसे ओझल हो जाना चाहा परन्तु बेचारी वहांसे भागने का इरादा कर ही रही थी कि इतनेमें दूसरी मोटर ठीक उसके पास आकर

ठहर गई और दूसरे क्षण दीवान विजयसिंह उसके सामने खड़े थे। उन्हें देखते ही पुष्पाके पैरों तलेकी जमीन खिसक गई—भय, लज्जा, क्षोभ तथा आत्मग्लानिसे व्याकुल हो वह उनके पैरोंपर गिर पड़ी।

दीवानजीने उसे कुछ नहीं कहा अपितु बड़े प्यारसे उठाकर हृदयसे लगा लिया और माथा चूमते हुए बोले—"पुष्पलता! बेटी!! पढ़ लिखकर भी क्या कोई ऐसी गलती करता है? मुझे तुम लोगोंसे कभी भी ऐसी आशा नहीं थी; माता-पिताका जरा भी खयाल नहीं किया।"

पुष्पा कुछ बोली नहीं, चुपचाप नीची नजर किये हुए रोती रही। कुछ क्षणके बाद दीवानजीने पुनः पूछा—"कुमारसिंह कहां है बेटी?" इस बार बड़ा साहस करके उसने उत्तर दिया—

"आपकी मोटर आती हुई देखकर वे न जाने कहां भागकर अलोप हो गये।"

"और इस मोटरका ड्राइवर? तुम्हारी मोटर यहां खड़ी क्यों की गई थी?" उन्होंने पूछा।

अब पुष्पाको सारी बातें बतानी पड़ीं—इच्छा न रहते हुए भी धीरे २ उसने अपने साथ घटित सारी घटना सुना डाली, जिसे सुनकर उन्हें भी ड्राइवरके ऊपर बड़ा क्रोध आ। उसके पास जाकर देखनेसे मालूम हुआ कि वह अभी मरा नहीं जीवित है, उसके मरनेकी कोई आशा भी नहीं थी, अतः उसे और मोटरको उसी दशामें छोड़कर वे बोले—

"पुष्पा! बेटी!! सुबह हो गई है, तुम लोगोंके भागनेका हाल अभी सिवा घरवालोंके और किसीको मालम नहीं है, इसलिये दिन निकलनेसे

पहले ही हमें अपने घर पहुँच जाना चाहिये नहीं तो भेद प्रकट होनेपर हमारी कितनी बदनामी होगी, तुम स्वयं सोच सकती हो?"

"परन्तु वे..." दीवानजीके पीछे २ चलते हुए पुष्पाने धीमें स्वरमें कहा। उन्होंने उसका आशय समझकर पूछा—"क्या कुमारके लिये तुम कुछ कहना चाहती हो?"

"जी,—ऐसे भयानक जङ्गलमें वे अकेले कैसे..." रुक २ के पुष्पाने बड़ी कठिनाईसे इतना वाक्य पूरा किया था कि बीचहीमें दीवानजी बोल पड़े—

"ओह! तुम उसकी चिन्ता न करो, वह डरपोक लड़का इसी सजा के लायक है। तुम्हें ऐसे डरावने स्थानमें अकेली छोड़कर भागते हुए जरा भी दया नहीं आई, फिर तुम्हीं क्यों उसके लिये इतनी कुण्ठित हो रही हो? चलो, छोड़ो, उसे यहींपर!"

वास्तवमें उस समय दीवानजी कुमारके उस भीरूपनपर अत्याधिक अप्रसन्न और क्रोधित हो रहे थे। पुष्पाके प्रति उसका यह व्यवहार उन्हें सन्तुष्ट न कर सका और फिर घरमें पुष्पाके न होनेसे ही उनकी अधिक बदनामी होनेकी सम्भावना थी और चूंकि वह उन्हें मिल ही चुकी थी, अतः उन्हें कुमारके लिये इतनी पर्वाह करनेकी जरूरत ही क्या थी।

मोटरके पास पहुँचकर एकवार पुष्पाने अपनी निराश दृष्टिसे चारों ओर देखा परन्तु वहां क्या था,—केवल काली निशाकी अंधियारी और जङ्गलका सांय-सांय—बस! इसके सिवा और कुछ भी नहीं। कुमारकी दशाका ध्यान आते ही पुष्पाका कोमल हृदय चंचल हो उठा, उसके मनमें एक हूक-सी उठी जो दीवानजीके भयसे उठकर भी वहीं दब गई।

उन लोगोंके बैठ जानेपर ड्राइवरने मोटर घुमाकर फिर देहरादून की ओर दौड़ा दी। दिन निकलनेके एक घण्टा पहले ही वे लोग कुन्दनपुर पहुँच गये। चन्द्रा और सावित्री दोनों दर्वाजेपर खड़ी हुई थीं—पुष्पा आते ही सावित्रीसे लिपट गई, बड़ी देर तक दोनों रोती रहीं। चन्द्राने दीवानजीसे कुमारके बारेमें पूछा, उन्होंने सारी बातें एक एक करके उसे सुना दीं, जिसे सुनकर उसने उसे ढूंढ़नेके लिये तुरन्त वहां कुछ आदमी भेजनेके लिये कहा।

बड़ी देर तक मिलते रहनेके बाद सावित्रीने पुष्पासे कहा—'बेटी जा अपनी मां से तो मिल ले। देख तो सही, तुम लोगों के बिना रो रो कर उनका कैसा बुरा हाल हो गया है।"

वास्तवमें चन्द्राकी आंखें सूज रही थीं; जान पड़ता था मानों सारी रात उसने जाग कर और रोते हुए ही बिताई है। सावित्रीके कहने से पुष्पा उसके पास गई और मिली भी ऊपरी मनसे—परन्तु यह जान कर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ कि वही चन्द्रा जो आजसे पहले दुश्मनों जैसा उसके साथ व्यवहार करती थी, उसकी गति विधिको उपेक्षाकी दृष्टिसे देखा करती, तथा उसकी हर बातकी अवहेलना किया करती थी—इस समय कितने प्यार कितने स्नेह और कितने प्रेमके साथ उससे मिल रही है। इस आकस्मिक परिवर्तनका कारण वह समझ न सकी। चन्द्रा ने उसे हृदयसे लगा लिया और बड़ी देर तक रोती रही।

रोते २ मनका बोझ जब कुछ हलका हुआ तो वह बोली—"बेटी! आजसे तू मुझे अपनी सगी मां के बराबर समझ! मैं तुझे विश्वास दिलाती हूँ कि जैसा तू कहेगी वैसा ही होगा—मुझे मालूम था कि

कुमार और तुम, दोनों एक दूसरे को प्रेम करते हो, मैंने तुम दोनोंके प्रेममें बाधा डालनी चाही परन्तु उसमें मैं सफल न हो सकी प्रत्युत उस पापके फल-स्वरुप मैं अपने बाप, भाई और पति तक से भी हाथ धो बैठी हूँ और आज इस संसारमें सिवा तेरे और कोई भी मेरा अपना नहीं रहा। बेटी, मुझ पर विश्वास रख! मैं तेरे ही सहारे जी कर अब जीवनकी अन्तिम घड़ियां पूरी करना चाहती हूँ।"

इसी प्रकारकी बहुत-सी बातें करती २ चन्द्रा बड़ी देर तक फूट २ कर रोती रही, उसके साथ ही पुष्पाके नेत्रोंसे भी आसू निकलते रहे। बड़ी मुश्किलसे सावित्रीने समझा-बुझाकर उन दोनोंको अलग किया और फिर इधर उधरकी बातें होती रहीं। शामको जब दीवानजी काम काजसे छुट्टी पाकर दीवानखानेसे वापस आये तो चन्द्राने उनसे कुमारसिंहके बारेमें पूछा। उन्होंने उत्तर दिया कि—"आज सुबहसे ही कई आदमी उसे ढूंढनेके लिये भेज दिये गये थे मगर वे सब वापस आगये हैं। इधर उधर जंगलमें दूर २ तक ढूंढने पर भी उसका कहीं पता नहीं चला मालूम नहीं कहां चला गया।"

कहते २ दीवानजीके मनमें भी पुत्र स्नेह उमड़ आया और उनके नेत्रोंमें अश्रु-विन्दु छलक आये। उनके एक ही तो लड़का था और वही हाथसे जाता रहा—यही क्या उनके लिये कम शोक की बात थी? दीवानजीकी बात सुन कर चन्द्रा और सावित्री भी फूट २ कर रोने लगी और सबके मनमें यही धारणा बैठ गई थी कि कुमारको अवश्य ही किसी जंगली जानवरने खा लिया होगा।

सत्रहवां परिच्छेद

मिस्टर पिकाकके मरनेके बाद 'दून एलेक्ट्रिक वेल्डिंग कं० के प्रोप्राइटर मिस्टर हरपाल बने। यद्यपि वे कुलीगिरी करते २ ही अकस्मात इतनी उन्नतिको प्राप्त हुए थे तथापि द्वेष, ईर्षा अथवा घमण्ड उन्हें छू तक भी नहीं गया था। वे सबके साथ समानताका व्यवहार करते और बड़ा छोटा कोई भी हो सबको एक दृष्टिसे देखा करते थे—यही कारण था कि वे बहुत जल्द ही सर्व प्रिय बन गये। नौकर चाकर, मित्र, बन्धु बान्धव सभी उन्हें चाहने लगे। बुद्धिका उनके मस्तिष्कमें अभाव नहीं था—वे जो भी काम करते पहले उसे भली-भांति ठोक-बजा कर जांच कर लेते तब करते।

डाक्टर यज्ञदत्त वर्मा उनके परम मित्रोंमें से एक थे। दोनों के स्वभावमें भी कोई अन्तर नहीं था—वे भी सुन्दर, सुशील और मिलन-सार तबियतके युवक थे और ये भी करीब २ उसी स्वभावके नवयुवकोंमें से एक थे। दोनों की मित्रता चरम-सीमाको पहुँच चुकी थी और यही कारण था कि वे बहुत जल्द ही इनके घरेलू डाक्टर भी बन गये। काम-काज से छुट्टी पाकर दोनों सायंकाल को कोठी पर मिलते और नित्य-प्रति एक साथ ही क्लब अथवा घूमने चले जाते। दोनों का व्यापार अच्छा चल रहा था, किसी बातकी कमी थी ही नहीं, अतः दोनों खुश थे और दोनों ही सन्तुष्ट भी थे अपने २ जीवनसे।

एक दिन शामके लगभग सात बजे दोनों मित्र बड़ी पैरेड की,

बीचवाली सड़कसे बातें करते हुए धीरे २ ओरीयन्ट सिनेमाकी ओर बढ़ रहे थे। दोनों किसी गूढ़ विषय पर विचार कर रहे थे, दोनों ही अपनी २ धुनमें मस्त थे, इधर उधर यद्यपि सैर करनेवालोंकी भीड़ काफी थी और रंग-बिरंगी चिड़ियायें खुदाके चिड़ियाखाने की नजर आती थीं, पर ये दोनों चले जा रहे थे अपनी ही धुनमें—उन्हें किसीसे मतलब नहीं था, दूसरों को भले ही इनसे हो। हुआ भी कुछ ऐसा ही—ठीक ये दोनों जब उस बड़े फौव्वारेके पाससे होकर जारहे थे एक बच्चागाड़ी आकर इनके सामने रुकी और उसे चलानेवाला एक पहाड़ी लड़केने मिस्टर हरपालकी ओर देखकर संकेतसे कुछ दिखाया।

डा० बर्माने उस लड़के को देखकर भी उसकी तरफसे अपनी दृष्टि घुमा ली परन्तु हरपालकी नजर उस ओर पड़ते ही वह कुछ चौंक-सा गया और उसने तुरन्त उस 'बुला' को आंखसे कुछ इशारा किया जिससे वह उसी क्षण अपनी गाड़ी लिये हुए जिधरसे आया था उधरको ही चला गया। उसके चले जाने पर हरपालने कहा—

"थोड़ी देर इस बेंच पर बैठकर मेरा इन्तजार कर सकते हो डाक्टर?"

"क्यों तुम कहां जारहे हो?" आश्चर्यान्वित हो डाक्टरने पूछा।

"कहीं ज्यादा दूर नहीं, जरा ओरियन्ट सिनेमा तक जाना चाहता हूँ। तुम यहीं बैठो, मैं वहां अधिक समय नहीं लगाऊंगा"—कहता हुआ हरपाल डाक्टरको वहीं छोड़कर वहांसे चलता बना। डाक्टर बर्मा उसके इस नये व्यवहारसे आज चकरा रहे थे—मित्रके किसी भी मामलेकी तह तक पहुँचनेका क्या उन्हें अधिकार नहीं है? है क्यों नहीं,

मित्रसे कपट करना कोई अच्छी बात है, मालूम करना चाहिये ये हजरत कहां जाते हैं। इसी प्रकार सोचते विचारते हुए डाक्टर साहब भी उसी ओरको चल दिये।

सिनेमाके बगलवाली गलीमें जाकर हरपाल अलोप हो गया। डाक्टर साहब भी थोड़ा फासलेसे एक मकानकी आड़में खड़े होकर हरपालको देखने लगे। वहां जाकर हरपाल जिससे मिला उसे देखकर डाक्टर मन ही मन मुस्करा पड़े, पर कुछ बोले नहीं और चुपचाप खड़े होकर उनकी एक एक हरकत को देखते रहे। कोई बीस बाईस मिनट के बाद हरपाल गलीसे बाहर निकला और बड़ी शीघ्रतासे पैरेडकी तरफ चल दिया परन्तु गलीकी मोड़पर ही डाक्टरको खड़ा देख वह कुछ सकपका-सा गया और जब उसने उन्हें मुस्कराते हुए देखा तब तो वह एकदम पानी-पानी ही हो गया।

डाक्टरने हरपालकी ओर बढ़ते हुए कहा—"क्यों मिस्टर! ये अकेले ही अकेले टट्टियोंकी आड़में शिकार खेला जाता है क्यों?"

"कैसा शिकार है? मैं मतलब नहीं समझा तुम्हारा डाक्टर!" उसने पूछा।

"हूँ—काहेको समझोगे तुम! सिनेमाके मैनेजरकी लड़की तुम्हारे ही हिस्सेमें आई है ना?" कहते २ डाक्टर मधुर हास्यसे मुस्करा पड़े। हरपाल झेप गया उसने डाक्टरकी पींठपर हल्की थपकी देते हुए कहा—"तुम बड़े खराब हो डाक्टर!"

"खराब हूँ या अच्छा ये तो तुम्हें उस समय मालूम पड़ेगा जब कि मैं तुम्हारी शिकायत उसके बापसे करूंगा। छिप २ कर किसीकी बहू

बेटीसे प्रेमालाप करना, यह भी कुछ अच्छी बात है—चोर कहींके ! जानते हो उसका बाप मेरा कितना दोस्त है !"

डाक्टरने यह बातें सच कहीं अथवा मजाकमें इसका अन्दाजा हरपाल न लगा सका, परन्तु उसकी दृष्टिसे यह भी छिपा न रह सका कि उस समय उनके अधरों पर एक छिपी हुई मुस्कराहट नृत्य कर रही थी तो भी हरपालके मनमें एक शंका उत्पन्न हो गई और वह खिन्न भावसे डाक्टर बर्माके साथ २ घूमने लगा। डाक्टर साहब भी हास्य-प्रिय तो थे ही रास्ते भर बेचारेको चुटकुले सुनाते और छेड़ते रहे।

घर वापस आकर दोनोंने भोजन किया। उस दिन आग्रह करके हरपालने डाक्टर साहबको भी अपने ही साथ भोजन कराया। भोजनके बाद दोनों बड़ी देर तक हास्य परिहासकी बातें करते रहे और अन्तमें साढ़े नौ बजेके करीब डाक्टर बर्मा उठकर अपने घर चले गये। उनके जानेके बाद जब रंभा सो गई तो हरपाल और उसकी बृद्धा मां में बड़ी देर तक किसी विषय पर तर्क वितर्क होता रहा अन्तमें दोनों किसी निश्चय पर पहुँच पर चुप हो गये और अपने २ पलंग पर पड़ रहे।

× × × ×

दो महीने बाद—

देहरादूनकी जनताने देखा दो बरातें बड़ी धूम-धामसे निकलीं। दोनों बरातोंके दहेजकी एक-एक वस्तु मूल्यवान, भड़कीली तथा मनमोहक थी। देखनेवाले कहते थे कि ऐसे ढंगसे सजाई हुई बरातें बहुत कम ही देखनेमें आती हैं, बरातियोंको किसी प्रकारकी भी शिकायत करनेका मौका नहीं मिला और जलूस बड़े समारोहके साथ बैण्डकी सुरीली

आवाजमें झूमता, वर-वधूको लिये हुए निर्धारित स्थानपर पहुँच गया।

हरपाल और डाक्टर वर्मा अपनी २ प्रेयसियोंसे विवाह करके आज सन्तुष्ट थे, प्रसन्नताका उनको ठिकाना नहीं था। सिनेमाके मैनेजरकी लड़की सुलक्षणा देवी भी हरपालको पाकर सन्तुष्ट थीं—डाक्टर बर्माकी कृपासे ही आज वे दोनों प्रणयी खुश नजर आते थे वरना शायद अकेले हरपाल तो कुछ भी न कर पाते। हरपाल भी इस उपकारका बदला चुकानेसे भला कब चूकते—उन्होंने भी अपनी बहिन रंभाका विवाह डाक्टरके साथ करके इस ऋणसे मुक्त हो जाना चाहा। हरपालके प्रार्थना करने पर डाक्टरने यह जानते हुए भी कि रंभा एक ईसाई बापकी बेटी है, उसकी बातको स्वीकार कर लिया—करते भी क्यों ना, इतने दिनोंसे उनके घर आते जाते थे—प्रेमांकुर तो गुप्त रीतिसे पहले ही पैदा हो चुका था, आवश्यकता थी सींचकर केवल उसे बड़ा करनेकी—वह कमी भी पूरी होगई।

मि० पिकाक और जमींदार साहबमें बहुत पुरानी मित्रता होनेके कारण रंभा और पुष्पामें घनिष्ट सम्बन्ध था। विवाहके बाद पुष्पा बधाई देनेके लिये उसके घर गई तो रंभाने देखा वह सूख कर एकदम कांटा हो चुकी थी। कुमारसे मिलनेकी उसे इस जन्ममें कोई आशा नहीं रह गई थी इस लिये वह रंजमें अपने शरीरको घुलाकर स्वयं भी इस संसारको बहुत जल्द ही छोड़ देना चाहती थी। रंभासे उसकी यह दशा देखी नहीं गई—वह रो पड़ी, रोते २ वह बोली—"पुष्पा! बहन!! तुमने क्यों अपने शरीरको मिट्टी बना रक्खा है? जो चीज अलभ्य है—उसके लिये वृथा जान खोना कहां की बुद्धिमत्ता है।"

शुष्क मनसे उसने उत्तर दिया—"यदि इस जन्ममें वह वस्तु अप्राप्य हो गई है तो क्या अगले जन्ममें भी मैं उसे न पा सकूंगी बहन ? क्या हुआ यदि इस स्वार्थी संसारके लोगोंने उन्हें मुझसे जुदा कर दिया। यदि आज वे मेरे पास नहीं हैं तो इससे क्या उनकी मधुर-स्मृति भी मेरे मनसे भुलाई जा सकती है ? कभी नहीं—दुनियां की कोई शक्ति, मेरे मन-मन्दिरमें स्थापित उनकी मोहिनी मूरतको पृथक नहीं कर सकती। यदि मैंने आज तक उन्हें अपना आराध्य देव माना है, यदि उनके साथ मेरा प्रेम सच्चा है तो मुझे पूर्ण विश्वास है वे अवश्य ही एक दिन मेरे होंगे और मैं उनकी।"

रंभाको उसके अटल विश्वास पर विस्मय हुआ, उसके विशुद्ध प्रेमकी वह मन ही मन प्रशंसा करने लगी—उसने सच्चे मनसे उसे आशीर्वाद दिया, "भगवान तुम्हारी शुभ कामनाओंको सफल करें।"

ये दोनो इसी प्रकारकी बातें कर रही थीं कि इतनेमें डाक्टर बर्मा एक मजदूरके सिर पर बहुत-सा सामान रखाये वहां आ पहुँचे। उनके हाथमें भी चार थरमस थे, जिन्हें देखते ही रंभा बोली—"आज ये अगड़म-सगड़म क्या भर लाये ?"

"तुम्हें नहीं मालूम क्या ?" वे बोले—"हरद्वारका कुम्भ है, बारह सालके बाद यह महापर्व आया है—परसों वहां चलना है न, उसीके लिये सामान लाया हूँ।"

"अरे बाबा ! तो चार २ थरमस क्या होंगे ?"

"एंह, तुम्हें पता नहीं—देखो ! एक तुम्हारा, दूसरा मेरा, तीसरा तुम्हारी भाभीका और चौथा तुम्हारे उनका—यानी तुम्हारे भैयाका !"

रंभाको उस समय उनका व्यंग अच्छा नहीं लगा, उसने भौंहे तरेरते हुए कहा—"देखते नहीं हो मेरी एक दुखियारी बहन मेरे पास बैठी है और तुम्हें दिल्लगी······"

डाक्टर बर्मा तुरन्त ही बोल पड़े—"तो क्या हुआ ? इन्हें भी अपने साथ ले चलो गंगा मैय्या जब सब दुखियोंका दुख दूर करती हैं तो क्या इनका नहीं करेंगी ?"

बात थी तो युक्ति संगत, रंभाको भी भली लगी—उसने भी पुष्पासे पूछा—"हां बहन क्यों न तुम भी हमारे साथ हरद्वार चलो—मेला भी देख आना और साथ ही कौन जाने गंगा मैया तुम्हारी पुकार सुन ले तुम्हारी मनोकामना सफल हो जाय । हां बहन ! मेरा मन भी तीर्थ यात्रा करनेको चाहता है और इसके लिये मैंने दीवानजी को भी राजी कर लिया है। वे लोग भी सब जायेंगे साथमें मैं भी जाऊंगी—अच्छा है वहां जाकर जी बहल जायगा ।"

बहुत देर तक उनमें इधर उधरकी और २ बातें होती रहीं । इसके बाद पुष्पाने रंभासे बिदा ली और एक टांगेमें बैठ कर अपने मकानकी तरफ चल दी। घर पहुँच कर उसने चन्द्रा और सावित्रीसे हरद्वार कुम्भ पर्वका स्नान करनेके लिये चलने को कहा, उन लोगोंकी भी यही इच्छा थी अतः दीवानजीके आने पर उन लोगोंने उनसे भी अपनी २ इच्छा प्रकटकी, जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया और दूसरे दिन ही सबके सब हरद्वार चलनेकी तैयारी करने लगे ।

उपसंहार

भारतवर्षमें चार स्थानपर कुम्भ महा-पर्वका स्नान होता है ! उनमेंसे एक पुण्य तीर्थस्थान हरद्वार भी है—बारह वर्षके पश्चात् यह महापर्व पड़नेके कारण यात्रियोंकी संख्या इतनी बढ़ जाती है कि म्युनिसिपल कमेटी के कर्मचारियों को कामका भार सम्भालना भी कठिन हो जाता है।

आज दो दिनसे दीवानजी भी सपरिवार यहां आये हुए हैं। उनके साथ चन्द्रा, सावित्री और पुष्पा ये तीनों भी हैं ! ठहरनेके लिये उन्होंने नृसिंह भवनके ऊपरी हिस्सेमें एक कमरा पहले ही रिजर्व करा लिया था। शामके वक्त ये लोग खा-पीकर बाजारकी रौनक देखने निकले। बाजार खूब सजा हुआ था, बिजलीकी रोशनीसे दुकानें जगमगा रही थीं। रौनक देखते हुए वे लोग हरकी पैड़ी जा पहुँचे। आरती हो रही थी—सब खड़े हुए बड़े प्रेमसे आरती गा रहे थे। ये लोग भी वहां पहुँचकर आरती देखने लगे। पुष्पाने बड़ी श्रद्धासे हाथ जोड़े और मन ही मन गङ्गा मैय्या की मूर्तिके आगे नत-मस्तक खड़ी होकर न जाने क्या २ मानता मानने लगी।

प्रार्थना करनेमें वह इतनी लीन हो गई थी कि उसे यह भी मालूम न हो सका कि दीवानजी वगैरः कब उसे छोड़कर वहांसे चलते बने। जब उसने आंखें खोलकर देखा तो वहां कोई भी न था—यह जानकर वह तनिक भी विचलित न हुई और फिर घबरानेकी जरूरत भी क्या थी ?

ठहरनेके स्थानसे वह भली भांति परिचित तो थी ही—चल दी वह भी पुलपरसे होकर उस पारको रोड़ी टापूकी तरफ।

रोड़ी टापूमें पहुँचनेपर उसने देखा कि यहांका बाजार उस पारसे कहीं अधिक अच्छा और कायदेसे सजा हुआ है। दुकानें यद्यपि टीनकी और कच्ची बनीं थीं, पर इससे उनकी सजावटमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं पहुँचती थी! एक सिनेमा और कई तरहके तमाशे भी थे इस ओर—परन्तु पुष्पाको इन सबसे कोई दिलचस्पी नहीं थी। वह चली जा रही थी अपनी ही धुनमें,—सहसा चलते २ उसकी दृष्टि गङ्गाके किनारे एक जगह जाकर रुक गई। वहां काफी संख्यामें जन-समूह एकत्र हो रहा था। कोई महात्मा भाषण कर रहे थे और सब बड़े प्रेमसे अपने अपने २ स्थानपर बैठे हुए चुपचाप सुन रहे थे। भाषण बड़ा ओजस्वी जान पड़ता था; वे कह रहे थे—

"......भाइयों! इस संसारका बच्चा २ स्वार्थी है, यहांके प्राणी-मात्रमें स्वार्थ भरा हुआ है—इसका मोह करना सरासर भूल है। मेरी तरफ देखो, मैंने अपना..." अभी वे इतना ही कह पाये थे कि हठात् पुष्पाने दौड़कर उन महात्माजीका हाथ पकड़ लिया और बड़ी जोरसे झिकझोरती हुई बोली—

"संसारका बच्चा २ स्वार्थी है—इसका मोह करना सरासर भूल है। झूठे कहींके—कायरोंकी तरह मुझे अकेली छोड़कर यहां भाग आये। ढोंगी साधु, यदि तुम कायर नहीं हो—यदि तुम स्वार्थी भी नहीं हो तो चुपचाप मेरे साथ चले आओ नहीं तो तुम्हारा पोल खोलकर इतने लोगोंके आगे तुम्हें..."

"नहीं नहीं पुष्पा ? ऐसा न कर बैठना नहीं तो मुझे इन लोगोंके सामने शार्मिन्दा होना पड़ेगा। जैसा तुम कहोगी मैं वैसा ही करूंगा मगर तुम यहां आईं कैसे ?"

"धीरे २ सब मालूम हो जायेगा"—कहती हुई पुष्पाने साधूको साथ लिये वहांसे चल दी, लोगोंमें खलबली मच गई, तरह २ की कानाफूसी होने लगी—कोई कहता यह लड़की इस साधूकी बहन होगी, कोई कहता स्त्री होगी—कोई कुछ और कोई कुछ आपसमें ही कहते रहे, परन्तु उस तेजस्विनीसे पूछनेका किसीको साहस न हुआ—सब वहींपर अपनी २ मनमानी कहते और सुनते रहे।

पुष्पा साधूको लिये हुए सीधे नृसिंह-भवन पहुँची। वहां सब पहले हीसे उसकी इन्तजारमें बैठे हुए थे—सबसे पहले सावित्रीकी दृष्टि साधू पर पड़ी, वह देखते ही उसे यह कहती हुई चिपट गई—"मेरा बेटा! मेरा कुमार!! हा, यह तूने क्या भेष बनाया है बेटा! हमारे जीते जी तुझे साधू होनेको किसने कहा ?"

इसके बाद साधूजीने अपने पिताके चरण छुये, उन्होंने शुभाशीर्वाद दिया—फिर उसने चन्द्राको प्रणाम किया, उसने भी सिरपर हाथ फेर कर आशीर्वाद दिया। वर्षों बाद सहसा कुमारको पाकर सब लोग आश्चर्यमें डूब गये। सबके नेत्रोंमें इस समय प्रेमाश्रु छलक रहे थे, सबके मन प्रसन्न थे, सभोंने गंगा मैय्याकी मन ही मन आराधना की पुष्पाकी खुशीका तो कुछ ठिकाना ही न था। मानों उसे एक ऐसी चीज मिल गई जिसके लिये वह निराश होकर अपनी सारी आशायें त्याग बैठी थी। सच्चे मनसे की हुई गंगामैयाकी आरतीने आज वह चमत्कार

दिखा दिया, जिसकी स्वप्नमें भी कल्पना नहीं की थी। वर्षों की घोर तपस्याका फल उसे आज मिल गया।

कुम्भ-पर्वका स्नान करके पांचवें रोज वे सबके सब हंसी-खुशी अपने घर पहुँच गये। घर पहुँचकर चन्द्राकी इच्छाके अनुसार दीवानजीने बिना किसी प्रकारकी आपत्तिके शुभ मुहूर्तमें पुष्पा और कुमारको विवाह बड़े धूम-धामसे कर दिया। चन्द्राके मनमें इस समय कोई द्वेष, किसी प्रकारकी ईर्षा अथवा कपट नहीं था—वह एक आदर्श माताके समान उन दोनोंको ही नहीं वरन् गांवके बच्चे २ से स्नेह करने लगी, दुखियोंका दुख दूर करनेकी वह यथाशक्ति चेष्टा करती और अपने दास दासियोंसे सदा नम्रताका व्यवहार करती। विवाहका काम काज समाप्त हो जानेके कुछ दिन बाद दीवानजी भी कुमार सिंहको जमींदारीका सारा काम सौंप कर एक प्रकारसे निश्चिन्त हो गये और घर ही पर रहकर सबकी निगरानी करने लगे।

सुहागकी पहली रात थी। कुमार और पुष्पा दोनों शैय्यापर बैठे हुए चुपचाप एक दूसरेको देख रहे थे—कुछ करते धरते बन न पड़ रहा था, दोनोंके हृदय धड़क रहे थे! सहसा पुष्पाका हाथ कुमारके गले में गया और धड़कते हुए मनसे बोली—"मेरे साधू राजा!" कुमारने उसे हृदयसे चिपटा लिया और दोनों कपोलोंका चुम्बन लेते हुए वह बोला—"मेरी हठीली रानी!" और इसके बाद......बस!